

9793053654

ओ३म्

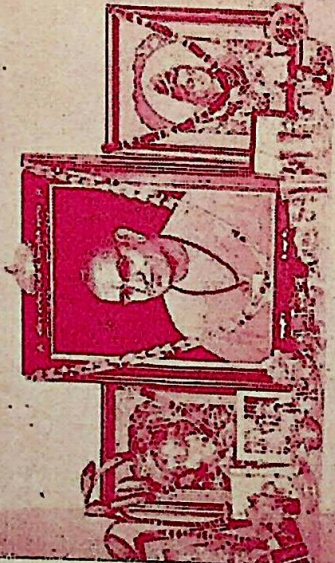
साधना-सदन का संक्षिप्त परिचय

“साधना-सदन” भारत की पवित्र भूमि हरद्वार में पावन गंगातट पर सन्तों, साधकों एवं भक्तों के निवास योग्य आश्रम है । आश्रम में भगवान् शिव, भगवान् राम एवं भगवान् कृष्ण के तीन विशाल मन्दिर हैं । आश्रम के प्रायः सभी कमरों में रसोई, स्नान-घर एवं शौचालय आदि की स्वतन्त्र व्यवस्था है । आश्रम में महात्मा लोग, कुछ विद्यार्थी एवं साधक भक्त निवास करते हैं । सब के भोजन की आश्रम में ही व्यवस्था है । यथा-साध्य गौमाता की सेवा भी होती है । मन्दिरों में प्रातःसायं पूजन, आरती एवं महिम्नादिस्तोत्रपाठ नित्यप्रति होता है । आश्रम में नित्यप्रति सत्संग (स्वाध्याय-प्रवचन) भी होता है । वातावरण पवित्र एवं शान्त है, अतः साधकों के लिए “साधना-सदन” विशेष आनन्दप्रद है ।

संस्थापक

महामण्डलेश्वर त्यागमूर्ति
श्री स्वामी गणेशानन्दजी महाराज





ॐ
 श्री गणेशाय नमः
 श्री गणेशाय नमः
 श्री गणेशाय नमः
 श्री गणेशाय नमः

वांये
 ब्रह्मलीन महामण्डलेश्वर
 स्वामी श्री प्रेमपुरी जी
 महाराज का
 पूजा में रक्खा हुआ चित्र ।

दांये
 महामण्डलेश्वर त्यागमूर्ति
 श्री स्वामी गणेशानन्द जी
 महाराज का सत्संग मंडल
 बम्बई में लिया हुआ चित्र ।

“ विज्ञानम् आनन्दम् ब्रह्म ”

स म्पा द की य

साधना सदन (आश्रम) में जिन स्तोत्रों का सम्मिलित रूप में नित्यप्रति पाठ होता है उन्हींका प्रस्तुत पुस्तक में संचय (संग्रह) है इसीलिए इसका नाम “साधना सदन स्तोत्र संचयः” रखा गया है, जिसकी विशेष चर्चा प्रथम संस्करण में हुई है। ‘साधना सदन स्तोत्र संचय’ का प्रथम संस्करण आज से लगभग पांच वर्ष पूर्व मन्दिरों की प्रतिष्ठा के अवसरपर छपा था। भगवान् की असीम अनुकम्पा से यह द्वितीय संस्करण सम्पन्न हो रहा है।

संगृहीत स्तोत्रों में प्रमुख महिम्नः स्तोत्र है। महिम्नः स्तोत्र पाठ संन्यासियों के प्रायः सभी आश्रमों में नियम से होता है। इस महिम्नः स्तोत्र का इतना व्यापक प्रचार है कि सम्पूर्ण भारत के सभी भागों में इसका अत्यधिक आदर पाया जाता है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक एवं पूर्वी समुद्र तट से पश्चिमी समुद्र तट तक इसका श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान होता है। प्रधान-रूप से भगवान् शिवजी के धामों, ज्योतिर्लिंगों एवं मन्दिरों में महिम्नः स्तोत्र का अनुष्ठान विशेष रूप से होता है। काश्मीरी शैव ग्रन्थों में तो इसका “सिद्धस्तोत्र” के नाम से उल्लेख हुआ है। आस्तिक भक्तों को महिम्नः स्तोत्र के अनुष्ठान से अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। भगवान् की मङ्गलमयी भक्ति एवं भगवान् के सगुण-निर्गुण स्वरूप साक्षात्कार का साधन भी यह महिम्नः स्तोत्र है।

भगवान् की अहैतुकी कृपा से ही इसका प्राकट्य है । यद्यपि इसके कर्ता गन्धर्वराज श्रीपुष्पदन्ताचार्य कहे जाते हैं । जिन्होंने इसी महिम्नः स्तोत्र के प्रभाव से अपनी खोई हुई शक्ति एवं सिद्धि को पुनः प्राप्त किया था । परन्तु साथ ही यह प्रसङ्ग भी शास्त्रों में आता है कि जब श्री पुष्पदन्ताचार्य को यह अभिमान हो गया कि “मैंने ऐसी स्तुति की, जिससे स्वयं भगवान् भी बहुत प्रसन्न हो गये ।” तब अन्तः साक्षी भगवान् तो पुष्पदन्ताचार्य का मन देख ही रहे थे । उन्होंने शीघ्र ही अपने सम्मुखस्थित भृङ्गी नामक गण को मुख खोलने के लिए कहा ‘पुष्पदन्त’ ने देखा कि भृङ्गी के वक्तीसों दांतों पर ‘महिम्नः’ के मूल वक्तीसों श्लोक प्रथम से ही अंकित हैं । पुष्पदन्ताचार्य को समझते देर नहीं लगी कि “मेरे और सभी भक्तों के उद्धार हेतु भगवान् ने मुझे निमित्त बना कर इस ‘महिम्नःस्तोत्र’ को प्रगट किया है । वास्तव में यह भगवान् की नित्य सिद्ध स्तुति है ।”

अत एव सम्मिलित रूप में या व्यक्तिगत रूप से भी यदि ‘महिम्नः स्तोत्र’ का पाठ भावपूर्वक एकाग्र चित्त से किया जाय तो तत्काल फल प्राप्त होता है ।

भगवान् का निर्गुण निराकार स्वरूप तो अद्वितीय तत्त्व है, उसमें भेद गन्ध की कोई बात ही नहीं । सगुण साकार की दृष्टि से यह स्तोत्र भगवान् शिव की स्तुति कहा जाता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न स्वाभाविक हो जाता है कि ‘साधना-सदन’ में तो भगवान् विष्णु के पूर्ण अवतार भगवान् श्रीकृष्ण एवं भगवान् राम आदि भी विराजमान हैं । फिर उन विग्रहों के सम्मुख भी भगवान् शिव की ही स्तुति क्यों ?

इसका मुख्य समाधान तो यह है कि 'जैसे हर और हरि' इन दोनों शब्दों का मूल एक ही 'हृ' धातु है। 'अ' और 'इ' प्रत्यय के अर्थ में भी कोई भेद नहीं है। केवल आकार भिन्न भासता है। इसी प्रकार 'हर और हरि' के वाच्य भगवान् शिव और भगवान् विष्णु में कोई भेद नहीं है और उनके विश्वास (प्रत्यय) में कोई भेद है केवल विश्वास के आकार में भेद है। परन्तु उससे वस्तु का भेद नहीं होता है। यदि आकार के भेद से वस्तु का भेद होने लग जाय तो प्रत्येक मनुष्य में भी भेद होगा। क्योंकि एक ही मनुष्य के बैठने पर आकार भिन्न होता है, और खड़े होने पर भिन्न होता है। किन्तु उससे मनुष्य भिन्न-भिन्न व्यक्ति नहीं माना जाता है। इसी प्रकार सगुण साकार भगवान् में भी कोई भेद नहीं है। उनके आकार भले ही भिन्न-भिन्न हों। अत एव 'विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र' में भी 'आदिदेव महादेव' आदि भगवान् शिव के नाम आते हैं, और 'शिव सहस्र नाम' में भगवान् विष्णु के नाम हैं। अतः विद्वानों का वचन भी है कि "हरिहरयोरेका प्रकृतिः प्रत्ययभेदाद्विभिन्नवद्भाति।" स्वयं महिम्नः स्तोत्र' में भी "रुचीनां वैचित्र्यात्" एवं 'वहलरजसे-' इत्यादि पद्यों से स्पष्ट किया गया है कि एक ही भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब कुछ हैं। एवं निज-निज रुचि के अनुसार साधक भिन्न-भिन्न साधन मार्गों से चलकर एक ही भगवान् की प्राप्ति करता है। अतः शिव और विष्णु को लेकर भगवान् में भेद की कोई शंका नहीं रहती है।

यह सब होने पर भी एक प्रश्न शेष रह जाता था कि जब 'महिम्नः स्तोत्र' का पाठ किया जाता है तो उसके अर्थों के अनु-

सार भगवान् शिव के ही सगुण साकार स्वरूप एवं लीलाओं का ध्यान होता है। भगवान् विष्णु का या भगवान् विष्णु के अवतार भगवान् कृष्ण और भगवान् राम आदि के स्वरूप व लीलाओं का नहीं ? इस प्रश्न का समाधान आज से करीब तीन सौ वर्ष से भी पूर्व हुए वेदादि शास्त्रों के महान् पंडित एवं ख्याति प्राप्त दार्शनिक विद्वान् तथा भगवान् कृष्ण के अनन्य अनुभवी भक्त संन्यासीयों में अग्रगण्य श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वतीजी ने किया है। उनको 'महिम्नः स्तोत्र' में अपने ईष्ट देव के भी स्वरूप एवं दिव्य लीलाओं का दर्शन हुआ और उन्होंने 'महिम्नः स्तोत्र' की व्याख्या में भगवान् विष्णु तथा उनके अवतार भगवान् राम एवं भगवान् कृष्ण आदि के भी स्वरूप तथा दिव्य लीलाओं की झांकी उपस्थित की। एवं अन्त में कहा कि "एकात्मने नमो नित्यं हरये च हराय च।" अर्थात् हम एकात्मा हर और हरि के चरणों में एक साथ प्रणाम करते हैं।

भगवान् के भक्त एवं ब्रह्मविद्या के आचार्य संन्यासी सम्राट् स्वामी श्री मधुसूदन सरस्वती ने जो मार्ग दर्शन कराया वह साधना-सदन के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक सिद्ध हुआ है क्योंकि श्री मधुसूदन स्वामी की रीति से 'महिम्नः स्तोत्र' की 'हरि हर' पक्षीय व्याख्या से इस शंका का समाधान हो जाता है कि शिव महिम्नः स्तोत्र से भगवान् कृष्ण और भगवान् राम आदि की स्तुति कैसे होती है ? क्योंकि उक्त रीति से इस स्तोत्र में हरि और हर दोनों की महिमा का गान है।

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए साधना-सदन के लिए महिम्नः स्तोत्र की पूरी मधुसूदनी व्याख्या प्रकाशित होनी चाहिए

थी । परन्तु वैसी सुविधा न होने के कारण मधुसूदनी टीका का केवल विष्णु पक्ष भी संक्षेप से ही दिया गया है । यद्यपि श्री मधुसूदन स्वामी ने उनके टीका का सार लेकर टीकान्तर करने का निषेध किया है । तथापि टीकान्तर का तात्पर्य अपने नाम से और खासकर संस्कृत में टीका करने से है । यह (सान्वय भावार्थ) न तो किसी अन्य व्यक्ति के नाम से है और न संस्कृत में ही है । इसमें नाम तो श्री मधुसूदन स्वामी जी महाराज का ही है । केवल सर्वसाधारण जिज्ञासुभक्त, साधकों को इससे लाभ हो । इस उद्देश्य से मधुसूदन स्वामी की टीका के विष्णुपक्ष का सान्वय संक्षिप्त भावार्थ दिया गया है, और उसका श्रेय भी गुरुकुल विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० श्री रामनाथ जी वेदालंकार को है । उन्होंने मेरे एवं हिन्दू विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर श्री राजनारायण जी ओझा के अनुरोध पर अल्प काल में एवं शुद्ध निष्काम भाव से 'साधना सदन स्तोत्र संचय' के लिए उक्त सान्वय संक्षिप्त भावार्थ लिख दिया था । भगवान् की कृपा से उनका सब प्रकार से अभ्युदय हो ।

'महिम्नःस्तोत्र' का शिवपक्षीय सान्वय भावार्थ ब्रह्मलीन महामंडलेश्वर सद्गुरु श्री स्वामी प्रेमपुरी जी महाराज का है ।

जहाँ पाठभेद है वहाँ वही पाठ रखा गया है जो साधना-सदन के नित्य पाठ में अभ्यस्त हो गया है ।

कुछ श्लोकों का अर्थ दोनों ही पक्षों में प्रायः समान है । तथापि अन्वय एवं भावार्थ पृथक्-पृथक् ही दिया गया है । जिससे अपनी-अपनी रूचि के अनुसार केवल एक पक्ष का अर्थ देखने वाले भक्तों को भी सुविधा हो ।

अन्वय तो संस्कृत के विद्वान् महानुभावों के लिए है ।

जिससे वे समझ सकें कि अमुक श्लोक का अमुक अर्थ कैसे हुआ, और उसका भावार्थ सामान्य जिज्ञासु भवतों के लिए है ।

साधना-सदन में महिम्नःस्तोत्र पाठ के पूर्व जो आरती स्तुति एवं पुष्पांजलि की जाती है । वह जब शिवमन्दिर के सामने होती है, तब उसमें शिवमन्दिर स्थित भगवान् शिव, भगवान् विष्णु, श्री गणेश जी, दुर्गामाता एवं भगवान् सूर्य इन पंच देवों के अलावा आचार्य गुरु भगवान् दक्षिणामूर्ति एवं भगवान् शंकराचार्य की भी स्तुति होती है एवं अन्त में कुछ वेदमन्त्रों से पुष्पांजलि समर्पित की जाती है ।

श्री वृष्णमन्दिर (राधेश्याम मन्दिर) के सामने प्रथम तीन मन्त्रों में भगवान् विष्णु की स्तुति होती है, जिनमें दो मन्त्र क्रमशः भक्त शिरोमणि श्री प्रह्लाद जी एवं श्री ध्रुव जी के वचन हैं । पुनः अन्य श्लोकों में से वृष्णमन्दिर स्थित भगवान् वृष्ण, भगवान् लक्ष्मीनारायण एवं राधेश्याम की स्तुति होती है ।

श्री राममन्दिर के सामने श्रीराम मन्दिर स्थित माता जानकी जी एवं श्री लक्ष्मण जी सहित, भगवान् राम की तथा श्री हनुमान जी की स्तुति होती है । अन्त में सामान्यरूप से सब की स्तुति के रूप में श्री महिम्नःस्तोत्र का पाठ एवं 'शिव नामावलि' होती है ।

यद्यपि उक्त प्रकार से जैसे भगवान् शिव की स्तुति रूप से प्रसिद्ध 'महिम्नःस्तोत्र' द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति भी होती है, उसी प्रकार 'श्री विष्णु सहस्रनाम' से भगवान् शिव की भी स्तुति होती है । तथापि तत्तत्स्तोत्रों का तत्तद्देवताओं की स्तुति के लिए प्रधानतया उपयोग होता है । अतः जैसे 'महिम्नःस्तोत्र' से प्रधानतया भगवान् शिव की सायंकाल स्तुति की जाती है, उसी प्रकार

प्रातःकाल 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' से प्रधानतया भगवान् विष्णु की स्तुति करने के लिए 'साधना-सदन' में वैदिक शान्तिपाठ के साथ 'श्री विष्णुसहस्रनाम' का पाठ होता है । क्योंकि 'साधना-सदन' में भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णु के अवतार भगवान् कृष्ण एवं भगवान् राम की समान रूप से प्रधानता है । अतः इस संस्करण में 'साधना-सदनस्तोत्रसंचयः' में वैदिक शान्तिपाठ सहित 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' का भी सम्पादन कर लिया गया है ।

अन्त में सुप्रसिद्ध "श्री जय जगदीश हरे" आरती भी छाप दी गई है । क्योंकि कई अवसरों पर उसकी भी आश्रम में आवश्यकता होती है ।

इस संस्करण में भगवान् की मूर्तियों के चित्र इस उद्देश्य से दिये गये हैं कि जो सज्जन साधना-सदन मन्दिर से अन्यत्र भी इन स्तोत्रों का पाठ करें, उनको भी उक्त मन्दिर में भगवान् के समक्ष पाठ करने जैसा आनन्द की प्राप्ति हो ।

यद्यपि "साधना-सदनस्तोत्रसंचयः" साधना-सदन में नित्य-पाठ के निमित्त प्रकाशित किया गया है । एवं पाठक उसका अर्थ समझकर विशेष लाभान्वित हों, इसके लिए अर्थ भी दिया गया है, तथापि जो कोई भी भगवान् का भक्त एवं जिज्ञासु इन स्तोत्रों का पाठ एवं स्वाध्याय श्रद्धाभक्ति से करेगा, उसको अवश्य भगवान् की परमानन्ददायिनी कृपा प्राप्त होगी ।

इस संस्करण के प्रूफ संशोधन आदि में हमारे ब्रह्मचारी दत्तचैतन्य जी ने बहुत सहयोग दिया है । इसके लिए हम उनको धन्यवाद न देकर बहुत २ शुभाशीर्वाद देते हैं । और भी जिनसे साक्षात् या परम्परया सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके हम आभारी हैं ।

वम्बई निवासी श्रीमती रमादेवी राधेश्याम कपूर (माताजी) की तरफ से यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है। यों तो मन्दिर एवं आश्रम निर्माण में उनका प्रथम से ही बहुत सहयोग प्राप्त हुआ है।

मन्दिरों को शिखर का एवं भगवान् शिव का चित्र श्रीमती सतीदेवी लोकूमल बाडवानी की ओर से तथा श्री हनुमान् जी का चित्र श्रीमती रामदेवी जी आहुजा माता की ओर से प्रकाशित हुआ है।

सर्वप्रथम प्रभु से प्रार्थना है कि उदार हृदय भवतों को सपरिवार राजी खुशी रखें एवं उनके विशुद्ध हृदय में आनन्दकन्द प्रभु की झांकी सदा वनी रहे।

सामान्य जानकारी के लिये पूर्व प्रकाशित साधना-सदन का संक्षिप्त परिचय, एवं उद्देश्य-नियम भी यथा स्थान दे दिया गया है।

प्रथम संस्करण में प्रकाशित ट्रस्टी प्रायः ज्यों के त्यों हैं। “साधना-सदन” आश्रम के परम हितैषी एवं सन्त प्रकृति के श्री स्वामी परमेश्वरानन्द जी महाराज नवीन ट्रस्टी नियुक्त हुए हैं।

हरिः ओं तत्सत्

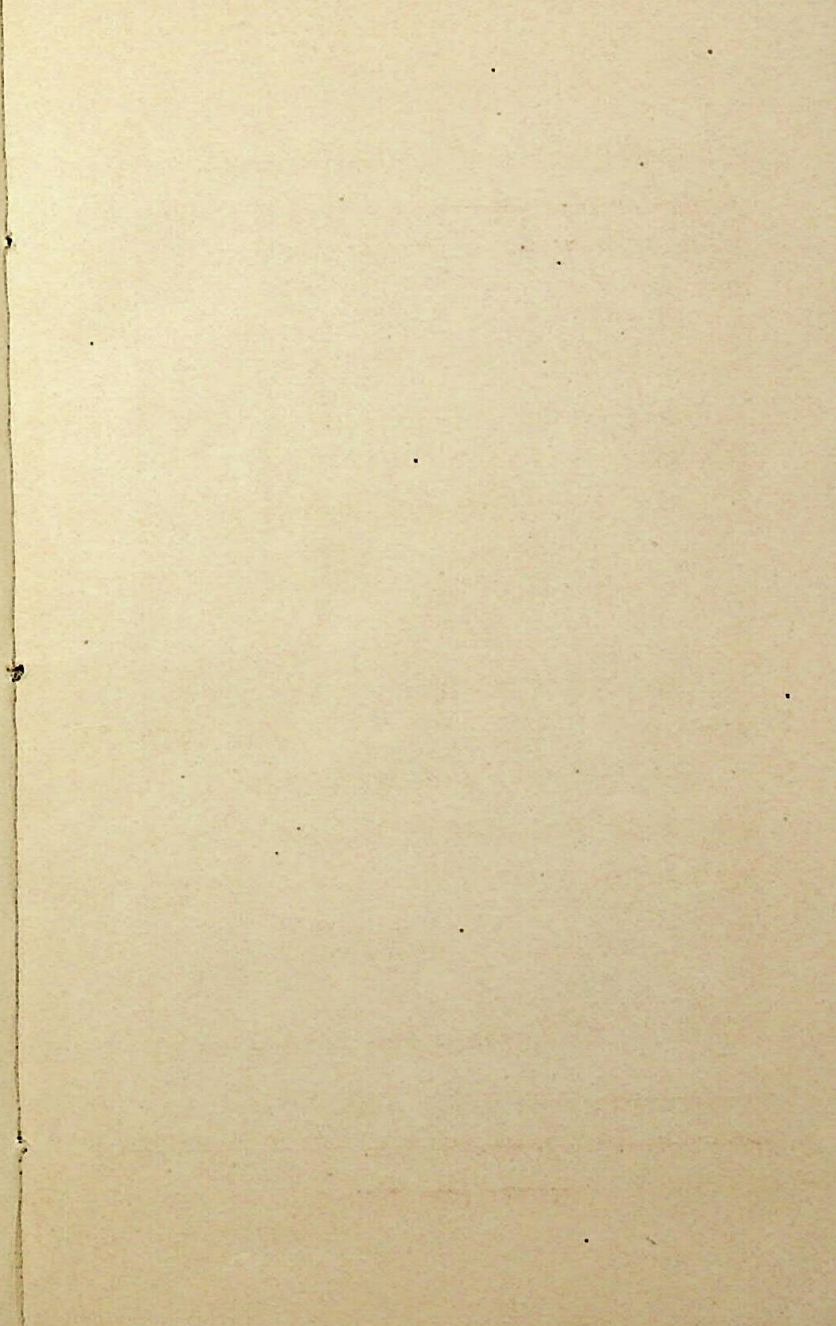
महामण्डलेश्वर त्यागमूर्ति श्री १००८

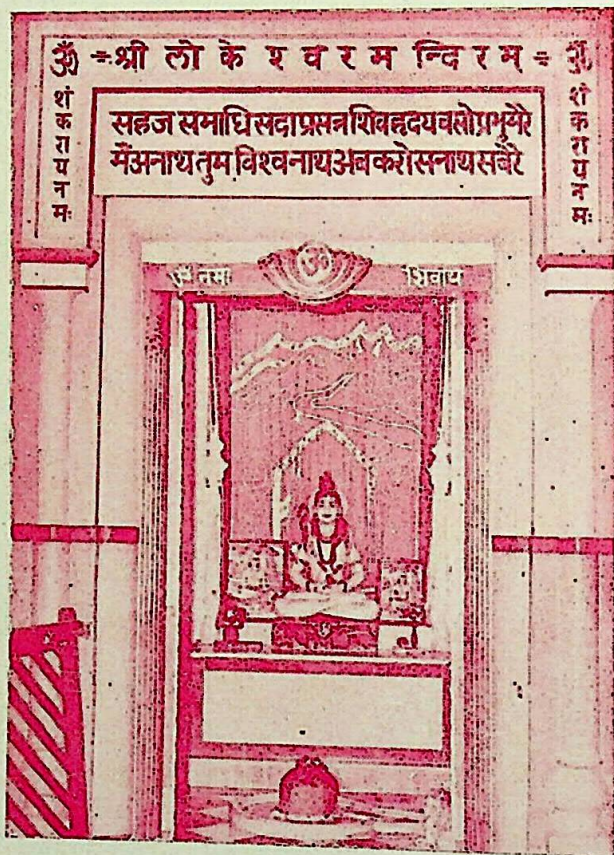
महाशिवरात्रि

वि.सम्बत्

२०२५

२५ मी ०१०१२११०००





साधनासदन देवालय के शिव मन्दिर में विराजमान
प्राचीन वाणमूर्ति एवं शाम्भवी ध्यान मुद्रा में प्रसन्न वदन
भगवान् शिव, शंकर ।



श्रीशिव मन्दिर के सामने आरती-स्तुति

ॐ जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश
शिव जय गौरीनाथ त्वं मां पालय नित्यं
त्वं मां पालय शम्भो कृपया जगदीश ॥

ॐ हर हर हर महादेव ॥१॥

सान्वयपदच्छेद—

ॐ गङ्गाधर हर शिव जय, गिरिजाधीश गौरीनाथ
शिव (तव) जय जय, (हे) शम्भो त्वस् मास् नित्यस् पालय,
(हे) जगदीश त्वं कृपया नित्यस् मास् पालय, हर, हर, हर
महादेव ॥

भावार्थ—

ओङ्काररूप सच्चिदानन्दघन परमात्मन् ! जटाजूट में भागीरथी गंगा को और हृदयारविन्द में ज्ञान-गंगा को धारण करने वाले ! (पृथ्वी का सबसे उच्च प्रदेश हिमालय है और हिमशिखररूपी शिरोभाग से ही त्रिभुवन-पावनी दोनों गंगायें प्रवाहित होती हैं । संसार के हित और सगर-पुत्रों के उद्धार के लिए महापुरुषार्थी भगीरथ के द्वारा लायी हुई स्वर्गज्ज्ञा के प्रपात को पाताल में न पँठने देकर जटाजूट में उलझा रख के शनैः शनैः प्रवाहित करते रहते हैं,—यह आशय है) (अशेष अज्ञान को) हर लेने वाले ! हे मंगलमय शिवजी ! (थके हुए बच्चों को जैसे माता पिता अपनी गोद में सुला के आराम पहुँचाते हैं, कर्म फल भोगते-भोगते थके हुए जीवों को भी प्रलय के समय उसी प्रकार अपने स्वरूप में सुला (समा) लेने वाले का नाम शिव हैं) (आपका) जय हो; पहाड़ी लड़की के उपर कृपा करके उस पार्वती के पतिभाव को स्वीकार करने वाले ! हे शिवजी ! आपका सदाही जय हो, जय हो । हे सबके सुख दाता ! आप मेरा सदा (कामक्रोधादि से) रक्षा करें । हे जगदीश्वर ! आप कृपा करके; अवश्यमेव मेरी (जन्म मृत्यु से रक्षा करें) । हे प्रणवरूप परमेश्वर ! हे त्रिताप को हर लेने वाले महादेव जी ! (मेरी विनती व्यर्थ न जाने पावे) ।

शिव शब्द उच्चारण में बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर एवं स्वाभाविक ही शान्तिप्रद है। इसकी सिद्धि (उत्पत्ति) 'वश कान्तौ' धातु से हुई है, जिसका आशय यह है कि जिसको सब चाहते हैं उसका नाम 'शिव' है। सब चाहते हैं अखंड आनन्द को अतएव शिव शब्द का अर्थ आनन्द हुआ। जहाँ आनन्द है वहीं शान्ति है और परम आनन्द को ही परम मंगल तथा परम कल्याण कहते हैं, अतएव 'शिव' शब्द का अर्थ परम मंगल या परम कल्याण भी समझना चाहिए। इस भाव को लक्ष्य में रखने के लिए ही पुनः पुनः 'शिव' शब्द को दोहराया गया है। जिसने सबका हरण (संहार) कर लिया वही अन्त में शेष रहेगा, फिर सृष्टि के समय सृष्टि भी वही करेगा। दूसरा कोई है ही कहाँ? जो सृष्टि या पालन करे—यह है 'हर' शब्द का अभिप्राय, इस अभिप्राय को दृढ़ करने के लिए ही बार बार 'हर' शब्द का प्रयोग हुआ है।

गजाननं भूतगणाधिसेवितं,

कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।

उमासुतं शोकविनाश कारकं,

नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥२॥

गजवदन सब भूतगण सेवा करें जिनकी सदा
जामून और कपित्थफल भक्षण करें हैं जो मुदा

उमानन्दन शोक भंजन प्रथम पूज्य गरुड को
करके स्मरण उस विघ्नहारी के नमूँ पद कमल को ॥

सान्वयपदच्छेद—

भूतगणाधिसेवितम्, कपित्थजम्बूकलचारुभक्षणम्,
शोकविनाशकारकम् विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् उमासुम् गजाननम्
अहम् नमामि ।

भावार्थः—

भूतगणों के द्वारा अपने अपने अधिकार के अनुसार
सेवित; कैथ तथा जांबुन के (गजभुक्त कपित्थ का दृष्टान्त
प्रसिद्ध है।) उत्तम फलों के भक्षक; शोक के विनाशक;
जिनके चरण कमल ही विघ्नों के नियामक (निवारक) हैं
उन पार्वती पुत्र गजमुख (भगवान् गरुड जी) को (नित्य-
म्प्रति तथा सर्व प्रथम) नमस्कार करता रहता हूँ ।

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥ ३॥

सान्वयपदच्छेदः—

उमापतिम् सुरगुरुम् देवम् (अहम्) वन्दे; जगत्कारणम्
(शिवम्) वन्दे, पन्नगभूषणम् मृगधरम् वन्दे; पशूनाम् पतिम्

(शङ्करम्) वन्दे; सूर्यशशाङ्कवह्निनयनम् त्रिनेत्रम्, (शिवम्) वन्दे; मुकुन्दप्रियम् वन्दे; भक्तजनाश्रयम् शिवम् वन्दे; वरदम् शङ्करम् (अहम्) वन्दे ।

भावार्थः—

उमा (ब्रह्म विद्या के) पति (पालन या वितरण कर्ता) शिवतत्त्वकनिष्ठ पार्वती शिव प्राप्ति के लिए घोर तप करने लगी । माता मेनका ने स्नेहकातर होकर 'उ' (वत्से) 'मा' (ऐसा मत करो) कहा; अतः उनका नाम उमा हुआ; इन्द्रादि देवों के गुरु; महादेव जी को (मैं) वन्दन करता हूँ । जगत के अभिन्न निमित्तोपादान कारण (शिवजी) को वन्दन करता हूँ । अपने बच्चों का भी भक्षण कर जाना-यह व्यवहार सर्प जाति में ही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं ऐसे स्वसन्तानभक्षी सर्पों को भी भूषण सा धारण करनेवाले; मृगधर शंकर (शतपथ ब्राह्मण १।४ में मृग को यज्ञ स्वरूप कहा है, यज्ञ के मृगत्व यानी अन्वेषण को धारण करने वाले शिव को वन्दन करता हूँ । पाशबद्ध जीवों के पालन (पाशमुक्त) करनेवाले शिव) को वन्दन करता हूँ । सूर्य, चन्द्र तथा अग्निरूप तीननेत्र वाले को; (चन्द्र के समान आह्लादक, सूर्य के समान अज्ञानतमो-नाशक तथा अग्नि के समान रागद्वेषादि दोषदाहक तीन नेत्र शिव के हैं) वन्दन करता हूँ । मुकुन्द (विष्णु भगवाद्) के प्रिय को या मुकुन्द है प्रिय जिसे उसको मैं वन्दन करता

हैं। भक्तजनों के एकमात्र आश्रय शिव का वन्दे। तथा वरदान देकर (सबको) सुखी करने वाले (शिव) को वन्दे। 'शम्' कहते हैं परम सुख को और 'कर' से करने वाला समझा जाता है। परम सुख को प्रदान करता है वही शंकर है। भोले भगडारी मुँह मागा वरदान देने में कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचते। ज़रा-सी भक्ति करने वाले पर भी आपके हृदय का दया-समुद्र उमड़ पड़ता है और सबको सुखी कर डालता है।

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधर—

मुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं,

शूलं वज्रं च खड्गं परशुम्—

भयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।

नागं पाशं च घराटां डमरुक—

सहितं साङ्कुशं वामभागे,

नानालङ्कारदीप्तं स्फटिक—

मणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥४॥

सान्त्वयपदच्छेद—

शान्तम् पद्मासनस्थम् शशिधरमुकुटम् पञ्चवक्त्रम् त्रिनेत्रम् दक्षिणाङ्गे शूलम्, वज्रम्, खड्गम् परशुम् च अभयदम्

बहन्तम् (तथा च) वामभागे नागम् पाशम् घण्टाम् डमरू-
कसहितम् च साङ्कुशम् नानालङ्कारदीप्तम् स्फटिकमणिनिभम्
पार्वतीशम् (शङ्करम्) (अहम्) नमामि ।

भावार्थः—

शान्त (शिवसमान तृष्णात्यागी ही शान्त रह सकता है)
पद्मासन स्थित, चन्द्रशेखर, पाँच मुख वाले (ईशान, अघोर,
तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात—ये पाँच शिवजी के मुख हैं)
ईशान का अर्थ है—शासक, अघोर का अर्थ है घोर कर्म भी
शिव कृपा से अघोर (मंगलमय) बन जाते हैं, तत्पुरुष का
अर्थ है आत्मस्वरूप में स्थित रहना वामदेव हैं—विकारों
के विजेता और सद्योजात हैं—शिशु के समान परम स्वच्छ
स्वभाव का निर्विकार), तीन आखों वाले, त्रिकालदर्शी;
दाहिनी बाजू के पाँच हाथों में अर्धमियों को आध्यात्मिक,
आधिदैविक और आधिभौतिक शूल-पीड़ा देकर धर्मात्मा बनाने वाले
त्रिशूल, अनर्थनिवारक वज्र, खड्ग, पुरुषार्थसूचक परशु, और
मोक्ष सूचक अभयप्रद हस्तमुद्रा को धारण करने वाले (तथा)
बांयी बाजू के हाथों में सर्प, पाश (विकार रूप पशुओं का
नियमन करने के लिए पाश है। पशु प्रायः जीवों को जिसके
द्वारा बांधकर वश में रखा जाता है वह प्रकृति (माया) ही
पाश है, पाश को हाथ में धारण करने का भाव है—माया
को अपनी मुट्ठी में दबा रखना-माया के वश न होना), घंटा,

डमरू (जन्म मृत्यु रागद्वेष आदिक द्वन्द्वों को अपनी मृत्वी में दबा रखा है, इस तात्पर्य को डमरू धारण से ध्वनित किया है), और अंकुश को (धारण करने वाले) अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित स्फटिक मणि के सदृश उज्ज्वल कांति वाले, पार्वतीपति को (मैं) नमस्कार करता हूँ ।

कपूर् रगौरं

करुणावतारं

संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।

सदा वसन्तं हृदयारविन्दे

भवं भवानीसहितं नमामि ॥५॥

सान्वयपदच्छेद—

कपूर् र गौरम् करुणावतारम् संसारसारम् भुजगेन्द्रहारम्
हृदयारविन्दे भवानीसहितम् सदा वसन्तम् भवम् (अहम्)
नमामि ।

भावार्थः—

कपूर् के सदृश गोरे (स्वच्छ प्रकाशमय दोषरहित ही गौरवर्ण होता है) । करुणा के अवतार, असार संसार में सारभूत दो हजार जहरीली जीभवाले महाभयंकर शेषनाग जैसे भुजगेन्द्र को भी गले का हार बना रखने वाले, (भाव यह है कि जोवनमुक्त के सामने विरुद्ध स्वभाव के भयंकर प्राणी भी प्रतिकूलता छोड़कर अनुकूल बने रहते हैं); हृदय

कमल में भवानी के सहित निरन्तर निवास करने वाले शिवजी को (मैं) नमस्कार करता हूँ ।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,

त्वमेव बन्धुरचसखा त्वमेव ।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव

त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥६॥

सान्त्वयपदच्छेदः—

(हे) देव देव ! त्वम् एव मम माता, त्वम् एव पिता, त्वम् एव (मम) बन्धुः त्वम् एव विद्या, त्वम् एव द्रविणम् सर्वम् त्वम् एव ।

भावार्थः—

हे देवों के देव महादेव जी ! आप ही मेरी माता हैं । आप ही मेरे पिता हैं । आप ही बन्धु हैं । आप ही विद्या हैं । आप ही द्रव्य हैं, और कहाँ तक कहूँ ? मेरा सर्वस्व सब कुछ आप ही तो हैं ।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणानयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।

विदितमविदितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥७॥

सान्वयपदच्छेदः—

करचरणकृतम् वाक्कायजम् वा श्रवणनयनजम् मानसम्
वा कर्मजम् वा विदितम् अविदितम् अपराधम् एतत् सर्वम्
क्षमस्व (हे) शम्भो (तव) जय ।

भावार्थः—

हाथ या पैर से किये गये, वाणी या काया से पैदा
हुए, अथवा श्रोत्र या नेत्र से उत्पन्न हुए, मन से हुए, अथवा
अन्य किसी कर्म से उत्पन्न हो गये, और ज्ञात या अज्ञात जो
कोई मेरे अपराध हों, इन सब को माफ कर दीजिये । हे
शम्भो ! आपकी जय हो जय हो ।

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।

दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे

मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः॥८॥

सान्वयपदच्छेदः—

चन्द्रोद्भासित शेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे, सर्पैः भूषित-
कण्ठकर्णविवरे, नेत्रोत्थवैश्वानरे, दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बर-
धरे, त्रैलोक्यसारे हरे शम्भो ! चित्तवृत्तिम् मोक्षार्थम्
अचलाम् कुरु, अन्यैः कर्मभिः तु किम् ?

भावार्थः—

चन्द्र से देदीप्यमान भालप्रदेशवाले, कामदेव का नाश करने वाले, स्वर्ग से उतरती हुई गंगाजी को जटा जूट में धारण करने वाले, सर्पों से भूषित कण्ठ एवं कर्ण विवर वाले, उठती रहती है वैश्वानर कामदाहक विद्युत शक्ति की लाटें जिससे वैसे तृतीय नेत्रवाले, लम्बे लम्बे दाँत वालों हाथी के चर्म का सुन्दर वस्त्र बनाकर धारण करने वाले, त्रिलोकी के सार, दुःख को हरकर सुख करने के लिए भगवान् शंकर के स्वरूप-चिंतन में अपनी—अपनी चित्त वृत्ति को मोक्ष प्राप्ति के लिये स्थिर कीजिये । दूसरे महत्त्वशाली कर्मों की तो क्या आवश्यकता है ? कुछ भी नहीं । शिवचिंतनमें वृत्ति टिकाली तो इसमें सब कुछ आगया ।

हरिः ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।

तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥६॥

सान्वयपदच्छेदः—

हरिः ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि, तत् रुद्रः नः प्रचोदयात् ।

भावार्थः—

अज्ञान को हरने वाले, ज्ञानस्वरूप नवद्वार विशिष्ट पुरों में निवास करनेवाले तत्पद के लक्ष्यार्थ शिवस्वरूप का हम गुरु एवं शास्त्र द्वारा ज्ञान प्राप्त करें, और ज्ञान

की स्थिरता के लिए उन तत्पुरुष महादेव जी का ध्यान करें, ताकि पापको रूलाने वाले या रोग नाशक वे महादेव जी हमें परमार्थ पथ में अटल रहने की प्रेरणा करते रहें ।

भगवान् विष्णु को नमस्कारः—

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं
सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।

सहारवक्षस्थलकौस्तुभश्रियं

नमामि विष्णुं शिरसाचतुर्भुजम् ॥१०॥

सान्वयपदच्छेदः—

सशङ्खचक्रम् सकिरीटकुण्डलम् सपीतवस्त्रम् सरसीरुहेक्षणम् सहारवक्षस्थलकौस्तुभश्रियम् चतुर्भुजम् विष्णुम् शिरसा (ग्रहम्) नमामि ।

भावार्थः—

शङ्ख, चक्र, किरीट एवं कुण्डलसे सुशोभित, पीताम्बरधारी, कमल नयन, तथा वैजयन्तीमालासे युक्त, जिनका वक्षस्थल कौस्तुभमणि से विशेष शोभा पारहा है, उन चार भुजाधारी भगवान् विष्णु को नमस्कार करता हूँ ।

श्री दुर्गामाता का स्मरण—

प्रापत्सुमग्नः स्मरणं त्वदीयं

करोमि दुर्गेकरुणार्णवेशिवे ।

नैतच्छठत्वं ममभावयेथाः

क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥११॥

सान्वयपदच्छेदः—

दुर्गे करुणार्णवे शिवे ! आपत्सुमग्नः (अहम्) त्वदीयम् स्मरणम् करोमि, एतत् मम छठत्वम् न भावयेथाः, (यतो हि) क्षुधातृषार्ता (बालकाः) जननीम् स्मरन्ति ।

भावार्थः—

हे दुर्गे, हे दयासागर महेश्वरी ! जब मैं किसो विपत्तिमें पड़ता हूँ तो आपका ही स्मरण करता हूँ, इसे आप मेरी दुष्टता मत समझना, क्यों कि भूखे प्यासे बालक अपनी माँ को ही याद किया करते हैं ।

भगवान् सूर्य को प्रणाम—

सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् ।

श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥१२॥

सान्वयपदच्छेदः—

सप्ताश्वरथम् आरूढम् श्वेतपद्मधरम् प्रचण्डम् कश्यपा-
त्मजम् तम् देवम् सूर्यम्, अहम् प्रणमामि !

भावार्थः—

सात घोड़ोवाले रथ पर आरूढ़, हाथ में श्वेत कमल

धारण किये हुए प्रचण्ड तेजस्वी कश्यप कुमार सूर्य को मैं प्रणाम करता हूँ ।

श्री गुरुदेव एवं आचार्य को नमस्कारः—

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥१३॥

सान्वयपदच्छेदः—

ब्रह्मानन्दम् परमसुखदम् केवलम् ज्ञानमूर्तिम् द्वन्द्वातीतम्
गगनसदृशम् तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्, एकम् नित्यम् विमलम्,
अचलम् सर्वधीसाक्षिभूतम् भावातीतम् त्रिगुणरहितम् तम्
सद्गुरुम् नमामि ।

भावार्थः—

ब्रह्मानन्दरूप, परमसुखके दाता; अज्ञानरहित,
ज्ञानस्वरूप, रागद्वेषादि द्वन्द्वों से पर, आकाशवत् असंग
'तत्त्वमसि' आदिक महावाक्यों के लक्ष्यार्थ एक (अद्वैत)
नित्य त्रिकालाबाध्य; अमल, अचल; सब की बुद्धि के साक्षी;
षड्भावविकारोंसे रहित, त्रिगुणातीत, उस सद्गुरु को
कोटिशः नमस्कार करता हूँ ।

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं वादरायणम् ।

सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥१४॥

सान्वयपदच्छेदः—

केशवम् वादरायणम् शङ्करम् शङ्कराचार्यम् सूत्रभाष्य-
कृतौ भगवन्तौ पुनः पुनः (अहम्) वन्दे ।

भावार्थः—

भगवान् विष्णु के अवतार, यानी साक्षात् विष्णु, व्यास-
देव, और भगवान् शंकर के अवतार, यानी साक्षात् शंकर
शंकराचार्यजी महाराज, ब्रह्मसूत्र और उन पर शारीरिकभाष्य
की रचना करनेवाले, इन दोनों भगवत्स्वरूपों की बारंबार
मैं वन्दना करता हूँ ।

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।

व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥१५॥

सान्वयपदच्छेदः—

ईश्वरः गुरुः आत्मा इति मूर्तिभेदविभागिने व्योमवद्-
व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ।

भावार्थः—

ईश्वर, गुरु और आत्मा इस प्रकारकी मूर्तियों के भेद
से विभक्त होने पर भी (वास्तव में तो) आकाशकी तरह
व्याप्त, अविभक्त स्वरूप, दक्षिणामूर्ति शंकर को नमस्कार हो ।

पुष्पाञ्जलिमन्त्रः

हरिः ॐ

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि

धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

तेह नाकं महिमानः सचन्त

यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

सान्धयपदच्छेदः—

देवाः यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त तानि प्रथमः नि धर्माणि
 आसन्, तेह महिमानः नाकम् सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः देवाः
 सन्ति ।

भावार्थः—

विद्वानों ने देव पूजा, संगतिकरण तथा दानादि सत्कर्मों
 द्वारा यज्ञस्वरूप विष्णु भगवान् का यजन किया, वे पूजादि
 सत्कर्म प्रथम (प्रारंभसे) धर्म थे । वे विद्वान् लोग उन
 सत्कर्मों के प्रभाव से महिमाशाली बनकर स्वर्ग परमसुख
 रूप परमधाम में गये, जहाँ कि पूर्व समय के साधक लोग
 देव बनकर पहुँचे हुए हैं ।

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने
 नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ।
 स मे कामान् कामकामाय मह्यम्
 कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ॥१७॥

सान्त्वयपदच्छेदः—

राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने वैश्रवणाय वयम् नमः
 कुर्महे मे कामेश्वरः सः वैश्रवणः काम कामाय मह्यम् कामान्
 ददातु ।

भावार्थः—

राजाधिराज अकारणही सहायता करने के आदी कुबेरको
 हम सब नमस्कार करें । मेरी कामनाओं के परीक्षक वह
 कुबेर भगवान् मनुष्य लोक से लेकर ब्रह्मलोक तककी तथा
 मोक्ष की कामनावाले मुझ को ब्रह्मलोक तक के भोग तथा
 मोक्ष दें ।

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥१८॥

सान्त्वयपदच्छेदः—

वैश्रवणाय महाराजाय कुबेराय नमः ।

वैश्रवण कुलोत्पन्न महाराज कुबेर को नमस्कार हो ।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
 विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।

सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै--

द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥१६॥

सान्वयपदच्छेदः—

विश्वतश्चक्षुः उत विश्वतोमुखः विश्वतोबाहुः उत विश्व-
तस्पात् द्यावाभूमी जनयन् ॐ देवः एकः बाहुभ्याम् (तथा च)
पतत्रैः सम्धमति ।

भावार्थः—

सब ओर आँखवाला—अर्थात् समस्त जीवों के कर्म, विचार तथा समस्त घटनाओं को अपनी दिव्यशक्ति द्वारा नित्यनिरंतर देखते (जानते) रहनेवाला, और सब तरफ मुख-वाला—अर्थात् श्रद्धा और भक्ति भरे भक्तों द्वारा जब कभी एवं जहाँ कहीं समर्पित की गई भोजन योग्य वस्तु (पत्रं पुष्पम्) को सहर्ष भोग लगानेवाला, सर्वत्र हाथवाला अर्थात् सर्वदेश काल के प्रत्येक पदार्थ को एक साथ पकड़ने में तथा अपने आश्रित जनों के संकटों का नाश करके उनकी रक्षा करने में समर्थ, और सब जगह पैखाला—अर्थात् जिस-जिस काल में एवं जिस-जिस देश में उनके भक्त श्रद्धा भक्ति से उन्हें बुलावें उस उस कालमें, और उस उस - देश में एकही साथ पहुँच सकनेवाला, आकाश पृथ्वी आदि अनेक नामरूपों को अपनी माया से उत्पन्न करता हुआ भी प्रणवरूप परमात्मा वस्तुतः एक अद्वैत ही है। वह परमात्मदेव

मनुष्यादि प्राणियों को दो दो हाथों से, तथा पक्षी पतंग आदि को पंखों से संयुक्त करता हैं—अर्थात् समस्त जीवों को आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न शक्ति एवं साधनों से संपन्न करता है ।

ॐ नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानी च ।

भक्त्या दत्तानि पूजार्थं गृहाण परमेश्वर ॥२०॥

सान्वयपदच्छेदः—

परमेश्वर यथाकालोद्भवानि च नानासुगन्धपुष्पाणि (तव) पूजार्थम् (मया) भक्त्या दत्तानि गृहाण ।

भावार्थः—

हे परमेश्वर मौसम के अनुसार उत्पन्न हुए, और अनेक प्रकार की दिव्य सुगंधीवाले पुष्पों को मैंने आपकी पूजा के लिये भक्ति पूर्वक अर्पण किये हैं । कृपया स्वीकार कीजिये ।

हरिः ॐ तत्सत् मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥२१॥

सान्वयपदच्छेदः—

हरिः ॐ तत् सत् मन्त्रपुष्पाञ्जलिम् (अहम्) समर्पयामि ।

भावार्थः—

जो हरि तथा ॐ है वही तत् तथा सत् है उन्हें अभि-मंत्रित पुष्पों की श्रद्धांजलि को मैं समर्पित करता हूँ ।

श्रीकृष्ण-मन्दिर के सामने

हरिः ॐ

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये

सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।

सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते

सहस्रकोटियुगधारिणे

नमः ॥ १ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

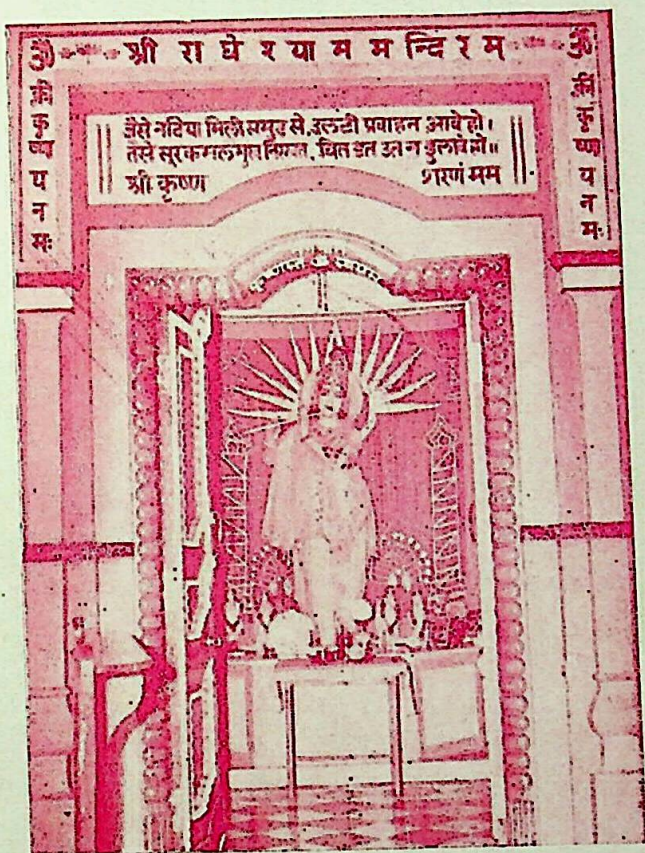
अनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे सहस्र
नाम्ने सहस्रकोटियुगधारिणे शाश्वते पुरुषाय नमः नमः
अस्तु ॥

भावार्थः—

देश कालवस्तुकृत अंत से रहित अनेक मूर्ति (शरीर)
वाले असंख्य हाथ, पैर, आँख, उरु शिरवाले नाना नामवाले,
अनंतकोटि युगों के धारक (जुग जूने) नित्य पुरुषको नमन हो
नमन हो ।

न केवलं मदहृदये स विष्णु-

राक्रम्यलोकानखिलानवस्थितः ।



साधनासदन देवालय के मध्य में स्थित श्रीकृष्ण मन्दिर में विराजमान अर्चावितार मुरली-मनोहर भगवान् श्रीकृष्ण एवं दांये लक्ष्मीनारायण तथा बांये राधाकृष्ण की छोटी प्रतिमायें ।

ॐ नमो
ॐ नमो
ॐ नमो

समेत्वदादींश्चपितः समस्तान्

समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ॥ २ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

(हे) पितः ! सः णिणुः केवलम् मत् हृदये न, (सः तु)

अखिलान् लोकान् आक्रम्य अवस्थितः सः सर्वगः मे त्वदादीन्
च समस्तान् समस्त चेष्टासु युनक्ति ।

भावार्थः—

श्री प्रह्लाद जी ने कहा कि हे पिता जी ! वह भगवान्
विष्णु केवल मेरे ही हृदय में हैं ऐसा नहीं, वह तो सम्पूर्ण
लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं । वहीं सर्वनियामक प्रभु
मुझको और आपको तथा सबको सभी चेष्टाओं में जोड़
रहा है ॥

योन्तः प्रविश्यममवाचमिमां प्रसुप्तां

संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।

अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्

प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥३॥

सान्वयपदच्छेदः—

यः अखिलशक्तिधरः (श्रीहरिः) स्वधाम्ना अन्तः प्रविश्य

इमाम् प्रसुप्तान् ममवाचम् संजीवयति, अन्यान् हस्तचरण

श्रवण त्वगादीन् प्राणान् च (सञ्जीवयति) पुरुषाय भगवते
तुभ्यम् नमः ।

भावार्थः—

ध्रुव जी बोले— जो सर्वशक्तिसम्पन्न श्री हरि मेरे
अन्तःकरण में प्रवेश कर अपने तेज से मेरी सोई हुई वाणी
को सजीव करते हैं तथा हाथ, पैर कान और त्वचा आदि
सर्व इन्द्रियों को भी चैतन्य प्रदान करते हैं, वे अन्तर्यामि
भगवान् आप ही हैं, अतः आपको प्रणाम है ।

वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात्,
पीताम्बरादरुण बिम्बफलाधरोष्ठात् ।

पूर्णन्दुसुन्दरमुखादरविन्द नेत्रात्
कृष्णात् परं किमपितत्त्वमहं न जाने ॥४॥

सान्वयपदच्छेदः—

वंशीविभूषितकरात् नवनीरदाभात्, पीताम्बरात् पूर्णन्दु-
सुन्दरमुखात् अरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् अरविन्दनेत्रात् अपि
परम् तत्त्वम् (अस्ति) किम् ? (इति) अहम् न जाने ।

भावार्थः—

वंशी से सुशोभित है कर कमल जिसका ऐसे नवीन मेघ
के समान कान्ति वाले, पीताम्बरधारी एवं पूर्ण चन्द्रमा के
माफिक सुन्दर मुखवाले बालसूर्य के समान लाल अधरोष्ठ

बाले, कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण से भी उत्तम तत्त्व कोई है,—यह मैं नहीं जानता । अर्थात् हमारे परमतत्त्व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं ।

कृष्णत्वदीय पदपङ्कजपञ्जरान्ते

अद्यैवमेविशतु मानसराजहंसः ।

प्राणप्रयाण समये कफवातपित्तैः

कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥ ५ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

कृष्ण अद्यैव मे मानसराजहंसः त्वदीय पदपङ्कजपञ्जरान्ते विशतु (हि) प्राणप्रयाणसमये । कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ ते स्मरणम् कुतः ?

भावार्थः—

हे हमारे सर्वस्व कृष्ण प्रभु ! अभी ही हमारा मन रूपी हंस आपके चरण कमल रूपी पिंजरे में प्रवेश कर जाय, क्योंकि प्राण प्रयाण के समय जब कफ, वात और पित्तसे कण्ठ भर जायेगा, तब भला आपका स्मरण कैसे होगा ? ॥

जगदादिमनादिमजं

पुरुजं

शरदम्बरतुल्यतनुं

वितनुम् ।

धृतकंजरथाङ्गदं

विगदं,

प्रणमामि

रमाधिपतिं

तमहम् ॥ ६ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

अनादिम् जगदादिम् अजम् पुरुजम् वितनुम् शरदम्बर-
तुल्यतनुम् विगदम् घृतकञ्जरथाङ्गगदम् तम् रमाधिपतिम्
अहम् प्रणमामि ।

भावार्थः—

जो स्वयं अनादि एवं जगत के आदिकारण हैं तथा स्वयं अजन्मा होकर भी बहुत रूपों में प्रकट होते हैं, जो निराकार होकर भी शरद ऋतु के स्वच्छ आकाशवत् शरीर वाले हैं, जो विशुद्ध होते हुए भी कमल चक्र एवं गदा को धारण करने वाले हैं, ऐसे रमा (लक्ष्मी) के अधिपति भगवान् विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ ।

श्याम प्रेममयीराधा राधाप्रेममयो हरिः ।

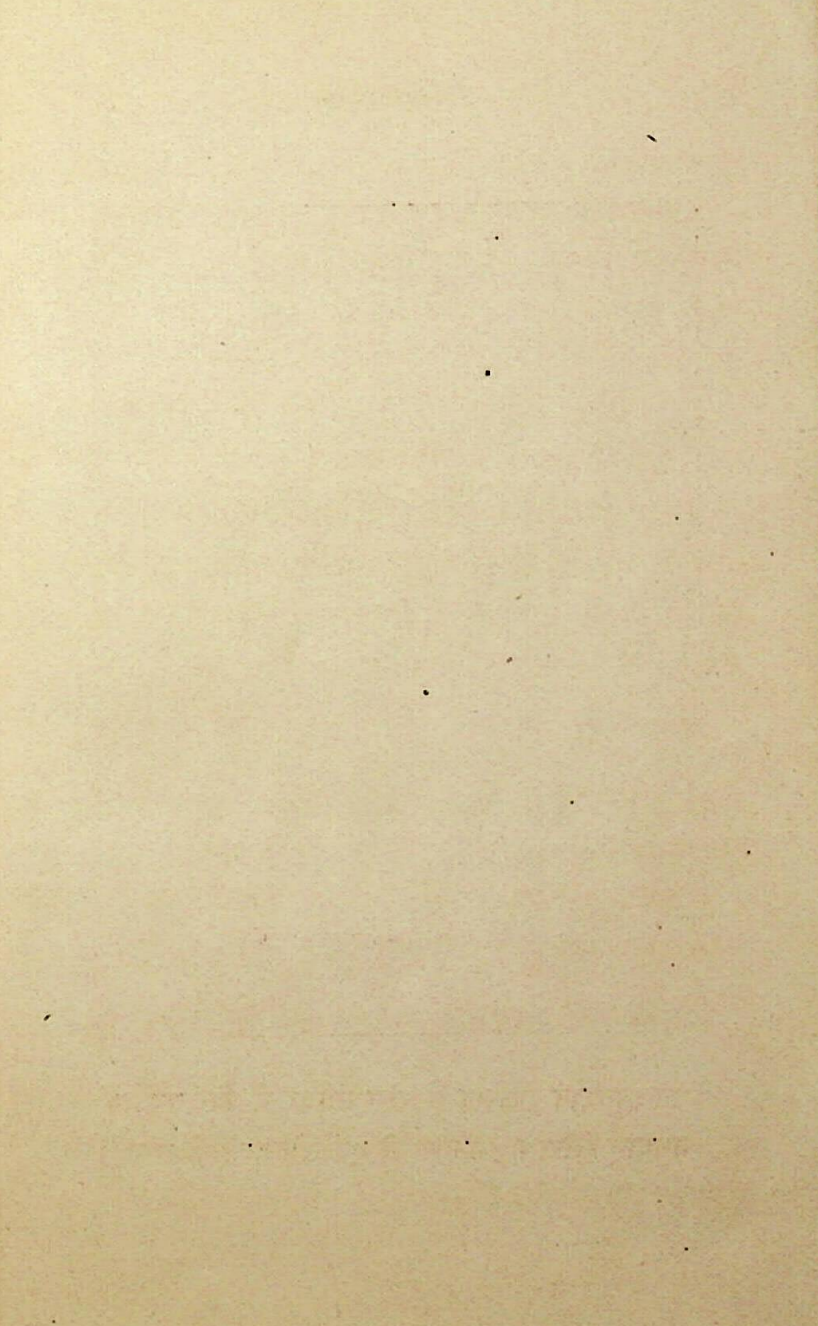
जीवने निधने नित्यं राधाश्यामौ गतिर्मम ॥ ७ ॥

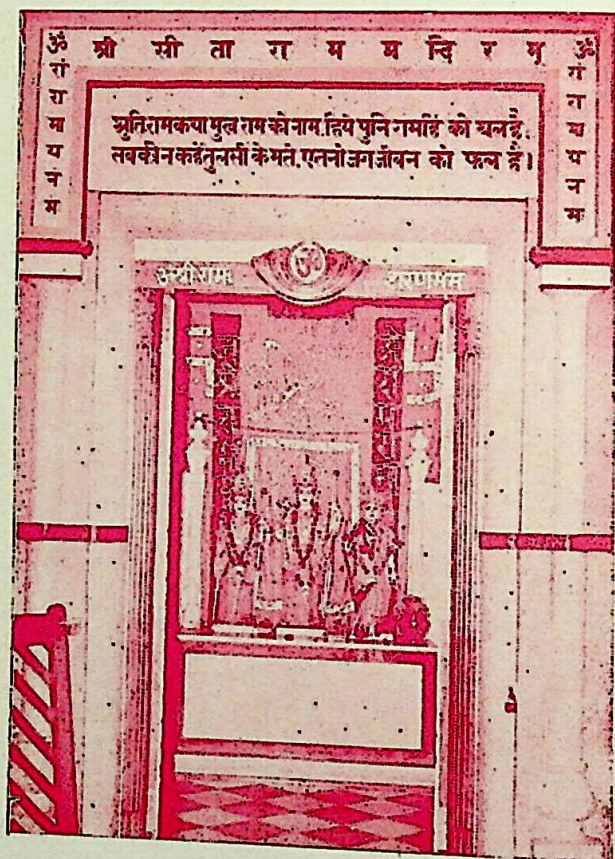
सान्वयपदच्छेदः—

श्याम प्रेममयी राधा (च) राधाप्रेममयः हरिः जीवने
निधने राधाश्यामौ नित्यम् मम गतिः (स्तः) ।

भावार्थः—

श्याम (कृष्ण) प्रेममयी राधा हैं, और राधा के प्रेम-स्वरूप श्याम (कृष्ण) हैं । इस जीवन में तथा शरीर छोड़ने के अनन्तर अर्थात् इस लोक एवं परलोक में वही राधा-श्याम एकमात्र हमारे गति हैं ।





साधनासदन देवालय के राम मन्दिर में विराजमान
भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण जी एवं सीता जी के साथ ।

श्रीराम मन्दिर के सामने

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा-
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौऽयथाहेर्ममः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावितां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ १ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

यत् मायावशवर्ति अखिलम् विश्वम् ब्रह्मादिदेवासुरा
यत् सत्त्वात् यथा रज्जौ अहेः भ्रमः सकलम् अमृषा एव
भाति एकम् एव यत् पादप्लवम् हि भवाम्भोधेः तितीर्षाविताम्
तम् अशेषकारणपरम् रामाख्यम् ईशम् हरिम् अहम् वन्दे ।

भावार्थः—

जिनकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादिदेवता,
और असुर हैं, जिनकी सत्तासे रस्सी में सर्पके भ्रमकी भाँति
यह सारा दृश्य जगत् सत्यही प्रतीत होता है, और जिसके
केवल चरणही भवसागर से तरनेकी इच्छा वालों के लिए
एकमात्र नौका हैं, उस समस्त कारण से पर (सब कारणोंके

कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहानेवाले भगवान् श्री हनुमान् की मैं वन्दना करता हूँ ।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत

स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।

मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे

सदास्तु सा मञ्जुल मङ्गलप्रदा ॥ २ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

या रघुनन्दनस्य मुखाम्बुजश्री अभिषेकतः प्रसन्नताम् न गता तथा वनवासदुःखतः न मम्ले, सा मुखाम्बुजश्री मे सदा मञ्जुल मङ्गलप्रदा अस्तु ।

भावार्थः—

रघुकुल को आनन्द देनेवाले श्री रामचन्द्र जी के मुखारविन्दकी जो शोभा राज्याभिषेक से (राज्याभिषेक की बात सुनकर) न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई; और न वनवास के दुःखसे मलिनही हुई, वह (मुखकमल की छवि) मेरे लिये सदा सुन्दर मंगलों की देनेवाली हो ॥

नीलाम्बुज श्यामलकोमलाङ्ग

सीतासमारोपितवामभागम् ।

पाणौ

महासायकचारुचापं

नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥ ३ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम् सीतासमारोपितवामभा-
गम् पाणौ महासायकचारुचापम् रघुवंशनाथम् रामम् (अहम्)
नमामि ।

भावार्थः—

नीले कमलके समान श्याम, और कोमल जिनके अंग हैं,
श्री सीता जी जिनके वाम भागमें विराजमान हैं, और जिनके
हाथोंमें (क्रमशः) अमोघ बाण और सुन्दर धनुष है, रघुवंशके
स्वामी श्रीराम चन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणसरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥४॥

सान्वयपदच्छेदः यथाश्रुतान्वयः—

भावार्थः—

जिनका शरीर जलयुक्त मेघोंके समान सुन्दर
(श्यामवर्ण) एवं आनन्दघन है, जो सुन्दर बल्लकला) पीतव
स्त्र धारण किये हैं, जिनके हाथों में बाण और धनुष हैं,
कमर उत्तम तरकसके भार से सुशोभित है, कमलके समान

विशालनेत्र हैं और मस्तक पर जटा जूट धारण किये हैं, उन अत्यन्त शोभायमान श्री सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्गमें चलते हुए, आनन्द देने वाले श्रीरामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ ॥

श्री हनुमानजी को नमस्कारः—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं

दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्

सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं

रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥५॥

सान्वयपदच्छेदः यथाश्रुतान्वयः—

भावार्थः—

अतुलबल के धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु) के समान कान्ति युक्त शरीरवाले, दैत्यरूपीवन को ध्वंस करनेके लिए अग्निरूप, ज्ञानियों के अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, श्री रघुनाथजी के प्रिय भक्त पवन पुत्र श्री हनुमादजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं, श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥



साधनासदन देवालय स्थित राम मन्दिर में विराजमान
श्री हनुमान जी महाराज ।

स

अ

स्व

नि

व

ए

इ

॥ श्री महिम्नःस्तोत्रम् ॥

हरिः ॐ

गजाननं भूतगणाधिसेवितं, कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं, नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥

हरिः ॐ

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी

स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।

अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्

ममाप्येषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१॥

सान्वयपदच्छेदः श्री शिवपक्षे—

(हे) हर ते महिम्नः परम् पारम् अविदुषः स्तुतिः यदि
असदृशी तत् ब्रह्मादीनाम् अपि गिरः त्वयि अवसन्ताः अथ सर्वः
स्वमतिपरिणामावधि गृणन् अवाच्यः, मम अपि स्तोत्रे एषः परिकरः
निरपवादः ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

अज्ञान-पाप-तापको हरनेवाले हे शिवजी (निर्गुणनिरा-
कार निर्मायिक आपकी) महिमाको अन्तिम अवधितक-अर्थात्
पूर्णरूपसे न समझनेवाले-अनजान आदमीके द्वारा की हुई
आपकी स्तुति यदि आपके स्वरूप के योग्य नहीं है, अर्थात्

जैसी होनी चाहिये वैसी नहीं हो पाई है, तब तो वाणी के अव्यक्त ब्रह्मादि देवों की भी वाणी अर्थात् स्तुति आपके लिये अयोग्य ही है, और जो कदाचित् सब कोई अपनी अपनी बुद्धि शक्ति के अनुरूप स्तुति करने पर निर्दोष है (तब तो) मेरा भी आपकी स्तुति करने में यह (महिम्नः स्तोत्रनिर्माणरूप) प्रयत्न निर्दोष ही है किसी प्रकार निन्दनीय होही नहीं सकता ॥१॥

सान्वयपदच्छेदः—श्री विष्णुपदे—

अथ परम ! ब्रह्मादीनाम् गिरः पारम् विदुषः ते महिम्नः यदि स्तुतिः तत् (ते महिम्नः) असदृशी अवसन्नाः अपि अस्तु अथ अतिपरिणामावधि स्वम गृणन् सर्वः ते अवाच्यः । स्तोत्रे अपि मम अहः एषः अनिरपवादः परिकरः ।

भावार्थ श्री विष्णुपद में—

हे लक्ष्मी पति भगवान् ! ब्रह्मा आदि की वाणी का पार जानने वाले आपकी महिमा की यदि स्तुति हो तो वह आपकी महिमा के असदृश एवं अतितुच्छ भी क्यों न हो सार्थक ही है । क्योंकि उसके बाद आपकी अतिमात्र स्तुति करने वाले सभी आपके भक्त इस योग्य हो जाते हैं कि आप उनसे उनके सन्मुख आकर बातचीत करने लगते हैं (जैसे प्रह्लाद नारद आदि से आप बातचीत करते थे) ऐसे आपके स्तोता के लिए भी मेरा सदा यह दूषण रहित नमस्कार है ।

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
 रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
 स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
 पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

सान्वयपदच्छेदः—श्री शिवपद्मे

(हे हर !) तव महिमा वाङ्मनसयोः पन्थानम् अतीतः यम्
 श्रुतिः अपि अतद्व्यावृत्त्या चकितम् अभिधत्ते सः कस्य स्तोतव्यः कति-
 विधगुणः कस्य विषयः अर्वाचीने पदे तु कस्य मनः न पतति (कस्य
 च) वचः न (तन्मयं भवति) ।

भावार्थ श्री शिवपद्मे—

हे हर ! आपका माहात्म्य तो वाणी एवं मन के मार्ग
 (विषय) से परे या अलग है, क्योंकि जिस आप या आपके
 निर्गुण निराकार अनिर्वचनीय माहात्म्य या स्वरूप को वेद
 भी भाग त्यागलक्षणादिद्वारा (प्रतिपादन करने पर भी कहीं
 अनुचित वर्णन न हो जाये) इस भय से आश्चर्यान्वित होता
 हुआ प्रतिपादन करता है, और उस सगुण निराकार परमे-
 श्वर कितने ही (अनन्त) प्रकार के गुणोंवाला है, तात्पर्य
 कि सान्तवाणी या बुद्धि अनन्त का गान या ज्ञान किसी
 प्रकार भी कर नहीं पाती, तथा वह परमात्मा किस शब्द
 या अंतः करण की वृत्ति का विषय हो सकता । स्वयं विष-
 यी या निर्विषय होने के कारण वाच्यरूप से किसी का भी

नहीं हो सकता तथापि हे भक्ताधीन भोलेनाथ ! आपके नव-
निर्मित, परम रमणीय, सगुणसाकार स्वरूप में तो किसका
मन नहीं रम जाता ? और किसकी वाणी नहीं तन्मय हो
जाती ? अर्थात् परम रमणीय आपके सगुणसाकाररूप का
गुणगान या वरण करने में सब किसी के मनवाणी मस्त
हो जाते हैं ॥२॥

सान्वयपदच्छेदः—श्री विष्णुपद—

तव महिमा च वाङ्मनसयाः पन्थानम् अतीतः । अतद्द्वयावृत्त्या
यम् चकितम् श्रुतिः अपि अभिधत्ते, सः कस्य स्तोतव्यः ? कतिविष-
गुणः ? कस्य विषयः ? तु अर्वाचीने पदे कस्य मनः न पतति कस्य
वचः न पतति ?

भावार्थ श्री विष्णुपद में—

आपकी महिमा वाणी और मन से अगोचर है, आत्म-
भिन्न वस्तु के निषेध द्वारा श्रुति भी चकित होकर आपकी
ही महिमा का वर्णन करती है ।

ऐसे आपकी स्तुति कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई
नहीं कर सकता । आप कितने प्रकार के गुणों वाले हैं ?
अर्थात् अनन्त गुणों के अगार हैं या निर्गुण हैं । आप कि-
सके विषय हैं ? अर्थात् किसीके विषय नहीं हो सकते । हाँ
किन्तु आपके सगुण स्वरूप में किसका मन नहीं लगेगा ?
अर्थात् सभी का लगेगा । किसकी वाणी प्रवृत्त नहीं होगी ?
अर्थात् सभी की वाणी प्रवृत्त होगी ।

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-

स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।

मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः

पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथनबुद्धिव्यवसिता ॥३॥

सान्वयपदच्छेदः श्रीशिवपक्षे—

(हे) ब्रह्मन् मधुस्फीता परमम् अमृतम् वाचः निर्मितवतः
तव सुरगुरोः अपि वाक् किम् विस्मयपदम् तु पुरमथन मम
एताम् वाणीम् भवतः गुणकथनपुण्येन पुनामि इति अस्मिन्
अर्थे बुद्धिः व्यवसिता ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे ब्रह्मस्वरूप शिवजी ! शहद में सनी हुई अर्थात् संसार के
समस्त मधुर पदार्थों से भी अत्यन्त मधुर, सर्वथा निर्दोष अमृत-
मय वेदवाणी को (निःश्वासरूप से) निर्माण करने वाले सर्वज्ञ
सर्वशक्ति अन्तर्यामी आपको देवगुरु (बृहस्पति जी) की भी
वाणी (स्तुति) क्या आश्चर्य में डालने वाली हो सकती है ?
अर्थात् नहीं, सर्वश्रेष्ठ वेदवाणी की रचना करने वाले आपके
लिए देवराज या देवगुरुकृत स्तुति भी विस्मय-जनक नहीं बन
सकती । फिर भी त्रिपुरासुर का उद्धार करने वाले हे शिवजी
मैं तो अपनी इस (अमंगल) वाणी को आपके गुणगान करने से
उत्पन्न होने वाले पुण्य के द्वारा पावन कर लूं, इसलिए इस
(आपके गुणगान 'स्तुति' रूप) कार्य में मेरी बुद्धि तत्पर हुई
है ॥३॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

हे पुरमथन ब्रह्मन् ! वाचः परमम् अमृतम् निर्मितवतः
सुरगुरोः तव मधुस्फीता वाक् अपि किम् विस्मयपदम् ? मम
तु एताम् वाणीम् गुणकथनपुण्येन पुनामि इति अर्थे भवतः
बद्धिः व्यवसिता ॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

क्षीरसागर अथवा गोकुलरूपी पुर में निवास करने वाले
हे विष्णो ! समस्त वाणी का निरतिशय सार पूर्णरूप से जानने
वाले हिरण्यगर्भादि सब देवों के गुरु आपको माधुर्य से व्याप्त
वाग्देवी सरस्वती भी क्या आश्चर्यचकित करने वाली हो सकती
है ? अर्थात् नहीं हो सकती । तो फिर मेरी वाणी का तो कहना
ही क्या है । इस लिए मैं स्ययं स्तुति करने में प्रवृत्त नहीं,
हुआ हूँ । मैं तो यही समझता हूँ कि) ममता-मोह में पड़ी हुई
भक्त की उस वाणी को अपने गुणानुवाद के पुण्य से पवित्र किये
देता हूँ इस प्रयोजन को लक्ष्य में रख कर आपकी बुद्धि ही हमसे
स्तुति कराने के लिए प्रवृत्त हुई है ॥३॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्

त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।

अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं

विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

वरद ! जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् त्रयीवस्तु गुणभिन्नासु तिसृषु
तनुषु व्यस्तम् यत् इह तत् तव ऐश्वर्यम् विहन्तुम् एके जडधियः
अभव्यानाम् रमणीयाम् अरणीम् अस्मिन् व्याक्रोशीम् विदधते ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे वरदान देकर सबको निहाल कर देने वाले शम्भो ! जगत् का उदय (सृजन) पालन एवं प्रलय (व्यवस्थापन) करने वाला, ऋक्, यजु, साम आदिक सभी वेद जिसका वस्तु (वास्तविक) रूप से प्रतिपादन करते हैं, तथा सत्त्व, रज और तमोगुणों के भेद से भिन्न (ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन) तीनों, शरीरों में—मूर्तियों में विभक्त हुआ, जो यहां (ब्रह्माण्डभर में) प्रसिद्ध आपका ऐश्वर्य (महात्म्य) है, उसका खण्डन करने के लिए कई एक जड़बुद्धि वाले (नास्तिक लोक) कुबुद्धि लोगों को अच्छी लगने वाली, (लेकिन असल में) बुरी अहितकर आपके ऐश्वर्य के विषय में मिथ्या कल्पनाओं की चीं-पों मचाते रहते हैं । (वकवास करते हैं) ॥४॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

वरद ! यत् तव जगत् उदय-रक्षा-प्रलयकृत् त्रयीवस्तु गुणभिन्नासु तिसृषु तनुषु व्यस्तम् ऐश्वर्यम् तत् विहन्तुम् एके जडधियः अस्मिन् अभव्यानाम् रमणीयाम् अरमणीम् व्याक्रोशीम् इह विदधते ॥४॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे सकल अभीष्ट वस्तुओं का दान देने वाले प्रभो ! जो आपका जगत् की उत्पत्ति रक्षा और प्रलय करने वाला तीनों वेदों का तात्पर्य रूप सत्त्व, रज, व तम गुणों से विभक्त ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर रूप तीनों मूर्तियों के रूप में विन्यस्त ऐश्वर्य है, उसका खण्डन करने के लिए कुछ जड़बुद्धि लोग इस जगत् में

अभव्यों को रमणीय प्रतीत होने वाली किन्तु वस्तुतः अरमणीय खण्डनात्मिका वाणी बोलते रहते हैं । ॥४॥

अब उन जड़बुद्धियों की वकबास का नमूना दिखलाते हैं—

किमीहः किङ्कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्कैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः

कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(त्रिभुवन-निर्माण-समये) सः धाता किमाधारः, किमीहः, किङ्कायः, किमुपायः किम् उपादानः त्रिभुवनम् सृजति, इति अयम् कुतर्कः अतर्कैश्वर्ये त्वयि अनवसरदुःस्थः जगतः मोहाय कांश्चित् हतधियः मुखरयति ॥

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

त्रिभुवन निर्माण के समय वह त्रिभुवननिर्माता ब्रह्मा किस आधार पै बैठ के किस इच्छा से-किसके लिए, किस शरीर से, किन उपायों (साधनों या औजारों) से और किन कारणों (पदार्थों या मसालों) से तीनों लोकों को या ब्रह्माण्ड को पैदा करता है इस तरह का यह कुतर्क जिनका ऐश्वर्य तर्कका विषय नहीं बन सकता ऐसे आपके सम्बन्ध में अवकाश न पाकर डांवांडोल हुआ भी, जगत् को अज्ञान या भ्रम में फंसा रखने के लिए, कुछेक नष्टबुद्धि अथवा बुद्धीहीन जनों को वाचाल तथा वकबादी बनाता रहता है । ॥५॥

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

सःखलु धाता किमीहः किंकायः किम् उपायः किम् आधारः
किम् उपादानः च त्रिभुवनम् सृजति, इति अतर्क्यैश्वर्ये—
अनवसरदुःस्थः अयम् कुतर्कः जगतः मोहाय कांश्चित् हतधियः
मुखरयति ॥५॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

वह परमेश्वर किसकी चेष्टा से, किस शरीर से, किस सह-
कारी कारण से, किस आधार पर रखकर और किस उपादान
से तीनों लोकों की रचना करता है इस प्रकार तर्कातीत ऐश्वर्य
वाले आपके विषय में विना अवकाश के प्रयुक्त, अत एव दुष्ट
यह कुतर्क जगत को मोह में डालने के लिए कुछ हतबुद्धि को
मुखर करता है ॥५॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-

मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।

अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो

यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

अमरवर ! इमे लोकाः अवयववन्तः अपि किम् अजन्मानः,
किम् ? भवविधिः जगताम् अधिष्ठातारम् अनादृत्य भवति, किम् ?
वा अनीशः कुर्यात् भुवनजनने कः परिकरः ? यतः इमे
मन्दाः त्वाम् प्रति संशेरते ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

देवताओं में श्रेष्ठ हे महादेव जी ! ये (प्रत्यक्ष अनुभव में
आने वाले) पृथिवी आदिक लोक या अवलोकन के विषय पदार्थ

सावयव होने पर भी क्या जन्मरहित हो सकते हैं ? (नहीं हो सकते, क्योंकि जो पदार्थ अवयव वाले हैं, वे सबके सब उत्पत्ति स्थिति एवं नाश सहित ही हुआ करते हैं और) क्या जगत् की उत्पत्ति कार्य भू आदि चतुर्दश भुवनों के कर्ता के बिना ही हो सकता है? नहीं कर्ता के बिना कोई भी कार्य कभी भी हो ही नहीं सकता, यदि (कहा जाय कि) ईश्वर से भिन्न या सामर्थ्यहीन कोई जीव ही (जगत् का) करने वाला हो सकता है, तो भू आदि भुवनों के उत्पन्न करने में सामर्थ्यहीन उस जीवरूपी कर्ता के पास जगत् के पैदा करने के लिए कौनसी साधन सामग्री है ? अर्थात् जीव के पास कुछ भी साधन संपत्ति न होने के कारण वह कर्ता नहीं हो सकता, तो फिर वे लोग वैसी बेसिर पैर की कुशंका-यें क्यों किया करते हैं ? इसलिए कि वे मन्दभाग्य और मन्दबुद्धि भी हैं, अत एव आपके विषय में संशयात्मा ही बने रहते हैं ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

अमरवर ! अवयववन्तः अपि लोकाः किम् अजन्मानः ?
जगताम् भवविधिः किम् अधिष्ठातारम् अनादृत्य भवति ?
अनीशः वा कुर्यात् भुवनजनने परिकरः कः ? यतः (एवम्,
अतः) इमे मन्दाः त्वाम् प्रति संशेरते ॥६॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे देवाधिदेव ! सावयव भी लोक क्या जन्मरहित हो सकते हैं ? लोकों की उत्पत्ति क्रिया क्या अधिष्ठाता की अपेक्षा किये बिना हो सकती है ? और यदि ईश्वर से भिन्न ही कोई जगत् की रचना करे तो जगत् को उत्पन्न करने में सामग्री क्या

होगी ? इस कारण मूढ़ लोग ही आपके विषय में (ईश्वर है या नहीं आदि) संशय करते हैं ॥६॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति

प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

त्रयी सांख्यम् योगः पशुपतिमतम् वैष्णवम् इति प्रभिन्ने प्रस्थाने इदम् परम् अदः पथ्यम् इति रुचीनाम् वैचित्र्याद् ऋजु-कुटिलनाना पथजुषाम् नृणाम् पयसाम् अर्णवः इव त्वम् एकः गम्यः असि ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

तीनों वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, पाशुपतशास्त्र (शैवमत), वैष्णवमत इत्यादिक सच्चिदानन्द सागर परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए साक्षात् परम्परया वा उपयुक्त भिन्न २ मार्गों वा मतमतान्तरों से यह हमारा मत परे दूर कुटिल क्लिष्ट होने पर भी साक्षात् मोक्ष देने वाला होने से श्रेष्ठ है, और वह (उनका दूसरों का पन्थ) पथ में-मार्ग में चलते समय ही हितकर एवं सरल होने पर भी परम्परया मोक्षदायक होने से श्रेष्ठ नहीं है, इस प्रकार रुचियों के भिन्न-भिन्न होने से अपनी अपनी रुचि के अनुसार टेढ़े सीधे अनेक मार्गों के अनुयायी मनुष्यों को उखड़वाखड़ नाना मार्गों से प्रवाहित होने वाले जलप्रवाह को समुद्र के समान आप ही एक मुख्यरूप से प्राप्त

करने योग्य हैं। अर्थात् जैसे जल कहीं से भी चलकर एक समुद्र में ही पहुँचता है वैसे ही किसी भी संप्रदाय से चलने वाले जिज्ञासु जन एक आप (शिवजी) को ही प्राप्त करते हैं, यदि वे चलते रहें।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

तृयी साङ्ख्यम्, योगः पशुपतिमतम्, वैष्णवम्, इति, प्रभिन्ने प्रस्थाने, इदम् परम् अदः पथ्यम्, इति, च रुचीनाम्, वैचित्र्यात् ऋजुकुटिलनानापथजुषाम् पयसाम्, अर्णवः इव, त्वम्, एको गम्यः असि ॥७॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

तीन वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, शैवमत, वैष्णवमत इत्यादि विभिन्न मतमतान्तर हैं। इनमें यह श्रेष्ठ है, वह हितकर है। इस प्रकार लोगों का रुचि वैचित्र्य पाया जाता है। इस कारण सीधे-टेंढे नाना मार्गों का अवलम्बन करने वाले लोगों के लिए आप ही एक मात्र गन्तव्य स्थान हैं। जैसे कि सीधे-टेंढे नाना मार्गों से वहने वाले जलों का समुद्र ही एक गम्य स्थान होता है ॥७॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्मफणिनः

कपालं चेतोयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।

सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां

न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

वरद ! महोक्षः खट्वाङ्गम् परशुः अजिनम् भस्म फणिनः च

कपालम् इति इयत् तव तन्त्रोपकरणम् सुराः ताम् ताम् ऋद्धिम्
भवद्भ्रू प्रणिहिताम् दधति तु हि स्वात्मारामम् विषयमृग-
तृष्णा न भ्रमयति ॥

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

‘वर’ उत्तमोत्तम पदार्थों को, ‘द’ देकर सबको मालामाल
बना डालने वाले हे शंकर ! आपके पास सवारी के लिए बूढ़ा
बैल है जिसकी तीन टांगें नदारत हैं, (घर को सजाने योग्य
फर्निचर में) खाट का एक अंग (पाया) मात्र है (ओजारों में)
धुनी की लकड़ी फाड़ने के लिए बिना धार और बेंटे का एक)
फरसा या गँडासा है (ऐव ढांकने के लिए एक र्जीणर्शीण)
व्याघ्र, मृग या गज चर्म का टुकड़ा है, शरीर में उबटन लगाने
के लिए किसी भाग्यशाली भक्त के देह की खेह (राख) है
(शरीर को सुशोभित रखने के लिए जेवरों में) थोड़े से फणधर
सर्प और दो-चार टोकरे विच्छु हैं, और भोजनादि के लिए
पात्रों में) किसी ब्रह्मवेत्ता के शिर की खोपड़ी है उपरोक्त
इतनी ही आपके गृहव्यवहार को चलाने की सामग्री और संपत्ति
है । इससे तो मालूम होता है कि हे आशुतोष शिवजी ! आप
वरद न होकर महादरिद्र ही हैं, किन्तु नहीं, ऐसा होना संभव
नहीं हो सकता, क्यों ? तो सुनिये सुकर्म में रत रहने वाले सुकृति-
जन एवं इन्द्रादि देवता सबके सब उस उस अवर्णनीय और
अलौकिक समृद्धि को आपके ही कृपाकटाक्ष से प्राप्त करके
स्वतन्त्र रूप से उपभोग कर रहे हैं, (हे सदाशिव ! आप ऐसे
अनोखे दाता हैं) तो फिर अपने लिए थोड़ी सी भोगसामग्री रख
क्यों नहीं छोड़ते ? इस पर कहते हैं—जब कि अर्हर्निश अपने
स्वरूपभूत आत्मा में ही रमण करने वाले जीव को भी भोग्य

पदार्थों से प्राप्त होने वाले शब्द स्पर्श रूप रस गंधरूपी विषयों की मृगतृष्णा भ्रम में भुलाकर अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती, तो फिर आत्मस्वरूप शिव को नहीं भ्रमा सकती इसमें तो कहना ही क्या ?

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

वरद ! महः अक्षः भस्म-फणितः अङ्गम् अजिनम् खट्वा परशु, कपालं च इति इयत् तव तन्त्रोपकरणम् सुराः तु भवद्भ्रूप्रणिहिताम् ताम्-ताम् ऋद्धिम् दधति । स्वात्मा विषयमृगतृष्णा रामं नहि भ्रमयति ॥८॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे अभीष्ट वस्तुओं का वरदान देने वाले ! आपके पास तेजोमय चक्र है भस्म के समान शुभ्र तथा कोमलाङ्ग शेषनाग का अंग एवं चर्म आपकी शय्या है (अंग-पलंग हुआ और चर्म उस पर बिछी चादर हुई) आपके परशु (जिसे आपने परशु-रामावतार के समय ग्रहण किया था) और पद्म तथा शंख हैं । इतनी ही आपकी निर्वाह सामग्री है । तो भी देवता आपकी ही अकुटी संचालन से सम्पादित अपनी अपनी समृद्धि को धारण करते हैं । यह सत्य है कि जिसकी आत्मा स्वयं आप हैं ऐसी विषय-मृगतृष्णा योगियों के रमणस्थान आपको भ्रमित नहीं करा सकती ॥८॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं

परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।

समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव

स्तुवजिह्वेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥९॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

पुरमथन कश्चित् इदम् सर्वम् ध्रुवम् गदति अपरः सकलम्
अध्रुवम् तु परः ध्रौव्याध्रौव्ये जगति व्यस्तविषये एतस्मिन्
समस्ते विस्मितः इव अपि तैः त्वाम् स्तुवन् न जिह्नेमि ननु मुखरता
खलु धृष्टा ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे त्रिपुरारे ! कोई एक सत्कार्यवादी सांख्यादिमतानुयायी
यह स्थूलसूक्ष्मादि सब पदार्थसमुदाय नित्य यानि नाशरहित है।
इस प्रकार स्पष्टस्वर से उद्घोष करता है, और कोई बौद्धादि
मतानुसारी सारा-का-सारा ब्रह्माण्डान्तरवर्ती वस्तु समुदाय
अनित्य यानि नाशवान्, असत् या शून्य वताता है, तथा अन्य
कोई न्याय-वैशेषिकादि-मतावलम्बी नित्यत्व तथा अन्य कोई
अनित्यत्व का विषय विश्व के पदार्थों में विभक्त है, अर्थात्
सावयव पदार्थ स्थूल रूप से अनित्य तथा परमाणु आदिक निरवयव
सूक्ष्म पदार्थ नित्य हैं—ऐसा मानता है। इन सब मतवादों के
कारण अचंभितता होकर भी उन मतमतांतरों के द्वारा आपकी
स्तुति करता हुआ मैं शर्मिन्दा नहीं हो रहा हूँ। सचमुच वाचालता
ही ढीठ हुआ करती है अर्थात् मैं ठहरा वक्तावादी, सो आपकी
स्तुति करने में आगे-पीछे का और उचित-अनुचित का भान
न कर ढीठ एवं निर्लज्ज की तरह जो कुछ मन में आता है,
वक्ता ही चला जाता हूँ।

एक समय ब्रह्मा और विष्णु का 'हम दोनों में कौन बड़ा है'
इस विषय पर झगड़ा हो गया। शिवजी ने उनके सामने लिङ्गा-
कार ज्योतिःस्वरूप में प्रकट हो कर उन पर अनुग्रह किया,

और उनके विवाद का निर्णय दिया इस कथा को दशवें श्लोक में संक्षेप से कहा जाता है ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

पुरमथन ! कश्चित् सर्वम् ध्रुवम् गदति, अपरः तु इदम् सकलम् अध्रुवम् गदति, परः एतस्मिन् समस्ते अपि जगति ध्रौव्याध्रौव्ये व्यस्तविषये गदति । (अहम्) विस्मितः इव तैः त्वाम् स्तुवन् न खलु जिह्मेमि । ननु मुखरता धृष्टा ॥६॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

क्षीरसागर अथवा गोकुलरूपी पुर में निवास करने वाले हे विष्णो ! कोई इस जगत् को ध्रुव अर्थात् नित्य कहता है (यह सांख्य की ओर संकेत है, जो उत्पत्ति से पूर्व भी कारण के अन्दर जगत् को सत् मानता है । विनाश के पश्चात् भी इसके मत में जगत् नष्ट नहीं होता, किन्तु इसका तिरोभावमात्र हो जाता है।) दूसरा इस सकल जगत् को अध्रुव अर्थात् क्षणिक कहता है (यह बौद्ध की ओर संकेत है) तीसरा इस समस्त जगत् में नित्यता तथा अनित्यता को पृथक् पृथक् वस्तुओं में पृथक् २ वताता है (यह नैयायिक आदि की ओर संकेत है जो आकाश, काल, दिक् आत्मा आदि कुछ वस्तुओं को नित्य तथा कार्यद्रव्यों को अनित्य कहते हैं) । मैं विस्मित हुआ-सा उन्हीं सब वादों के द्वारा आपकी स्तुति करता हुआ-सा लज्जित नहीं होता । वाचालता सचमुच बड़ी धृष्ट होती है ॥६॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः

परिच्छेत्तुं

यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।

ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरीश यत्

स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) गिरिश ! अनलस्कन्धवपुषः तव यत् ऐश्वर्यम् परिच्छेत्तुम् विरिञ्चिः उपरि हरिः अधः यत्नात् यातौ अनलम् ततः भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्याम् ताभ्याम् तस्थे तव अनुवृत्तिः किम् न फलति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हिमगिरी की गोद में समाधिमग्न शंकर ! आग के खंवे समान ज्योतिर्मय आकृतिधारी आप (ईश्वर) का जो लिंगाकार स्वरूप है, उसका थाह पाने के लिए ब्रह्मा ऊपर के भाग में, और भयहारीभगवान् विष्णु नीचे के हिस्से की तरफ पूर्ण प्रयत्नपूर्वक गये, (परन्तु देवताओं के हिसाब से हजारों वर्ष पर्यन्त दौड़ लगाते रहने पर भी जब) पार न पा सके, तब दुराग्रह छोड़कर भक्ति और श्रद्धा भार से नम्र होकर खूब स्तुति करते हुए वे दोनों आपके उस ज्योतिर्लिंग के समक्ष शरणागत भाव से चुपचाप खड़े हो गये । बाद आपने उन दोनों के झगड़े का फैसला दिया, और उन्हें अपने शुद्ध-स्वरूप का साक्षात्कार कराया । हे भोले भंडारी ! आपका श्रद्धाभक्तिपूर्वक किया हुआ अनुवर्तन-शरणागतादिरूप अनुसरण क्या-क्या फल नहीं देता ? अपितु आपकी सेवाओं से इह लोक, परलोक और मोक्ष तक सभी मनोवांछित फल सहज ही मिल जाया करते हैं ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

गिरिश ! अनलस्कन्धवपुषः तव ऐश्वर्यम् परिच्छेत्तुम् यत्नात् विरिञ्चिः उपरि हरिः अधः यातौ यत् अनलम् ततः

भक्ति-श्रद्धा-भर-गुरुगुणद्भ्याम् ताभ्याम् स्वयम् तस्थे किम्
तव अनुवृत्तिः न फलति ॥१०॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

गोवर्धन पर्वत पर लीलाशयन करने वाले, अथवा समुद्र
मंथन के समय मन्दराचल को पतला करने वाले हे विष्णु भगवन् !
तेजःपुंजरूप शरीर वाले आपके ऐश्वर्य को मापने के लिए
यत्न पूर्वक ब्रह्मा जी उपर और शेषनाग नीचे गये, पर क्योंकि
असफल हुए इस कारण भक्ति और श्रद्धा के अतिशय से बहुत
अधिक स्तुति करते हुए वे स्वयं रुक गये । अर्थात् वे और ऊपर
या नीचे नहीं गये । क्या आपकी सेवा फल नहीं लाती ॥१०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं

दशास्योयद्बाहून्भूत रणकण्डूपरवशान् ।

शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः

स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर ! विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

त्रिपुरहर ! यत् दशास्यः त्रिभुवनम् अयत्नाद् अवैरव्यति-
करम् आपाद्य रणकण्डूपरवशान् बाहून् अभूत इदम् शिरः
पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फू-
र्जितम् ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों पुरों (शरीरों) को हर लेने वाले
अथवा तीनों शरीरों में आसक्त जीवभावरूप त्रिपुरासुर का

संहार करने वाले कृपालु शंकर ! जो कि दशमुख रावण भूर्भुवः स्वः तीनों लोकों को विना ही विशेष परिश्रम के अर्थात् सहज ही में वैरभाव के लेश से भी रहित अर्थात् निष्कण्टक बनाकर अर्थात् लड़ाई की ललकार का जवाब देने वाला और संग्राम में सामना करने वाला त्रिलोकी में भी कोई न मिलने के कारण युद्ध खेलने की खाज जिनमें बराबर लगी रहती है, वैसी बीस-बीस भुजाओं को लिये स्वच्छन्द विहरा करता था, यह सब अपने मस्तकों को अपने ही हाथ से एक-एक करके काटकर हवन-कुण्ड में कई बार होमा है—ऐसी बलि (बलिदान कुर्वानी) है जिसमें अर्थात् आपके पादपद्मों की पूजा के लिए अपने मस्तक रूप कमलों की मालायें बना कर सादर समर्पित किया है जिससे वैसी रावण द्वारा की गई स्थायी आपकी भक्ति के प्रताप का ही स्फुरण है ॥११॥

रावण ने शिव की कृपा से महत्ता पायी और प्रभुता के मद में अहंशान भूलकर शिव से ही उलझ पड़ा तो उसे स्वर्ग या मृत्यु-लोक में तो क्या पाताल में भी स्थान न मिल सका । जिनसे बड़े बने उन्हीं से ऐंठने का फल यही तो होना चाहिए और होता भी है । इस आशय का प्रतिपादन बारहवें श्लोक से किया जाता है—

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

त्रिपुरहर ! दशास्यः त्रिभुवनम् अयत्नात् अवैरव्यतिकरम् आपाद्य बाहून् रणकण्डूपरवशान् यत् अभूत् (तत्) स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् (किञ्च) बलेः शिरः पद्मश्रेणीरचित-चरणाम्भोरुह ! इदम् (अपि) बलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् ॥११॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्तिरूपी तीनों पुरों को हर कर मोक्ष प्रदान करने वाले हे भगवन् विष्णु! रावण ने तीनों लोकों को विना यत्न के ही वैररहित बनाकर अपनी भुजाओं को जो युद्ध की खुजलाहट से परवश किया, वह (जन्मजन्मान्तर में की हुई) आपकी स्थिर भक्ति का ही प्रभाव है। और वलि के सिर रूपीपद्मनिःश्रेणि का (पांव रखने का स्थान) पर अपने चरणकमल रखने वाले हे परमात्मन् ! यह भी अर्थात् वलि के यज्ञ में जाना, तीन पग भूमि की याचना करना, दो पग में समस्त जगत् को माप लेना, और अन्त में तृतीय चरण वलि के सिर पर रखना, यह सब भी वलि की की हुई सुदृढ़ आपकी भक्ति का ही परिणाम है ॥११॥

अमुष्यत्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं

बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।

अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि,

प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्भ्रुवमुपचितो मुह्यति खलः । १२॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

त्वदधिवसतौ कैलासे अपि त्वत्सेवासमधिगतसारम् भुजवनम् बलात् विक्रमयतः अमुष्य त्वयि अलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि पाताले अपि प्रतिष्ठा अलभ्या आसीत् ध्रुवम् खलः उपचितः मुह्यति ॥

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

आपके निवास स्थान कैलास पर्वत पर ही आपकी सेवा (कृपा) से ही प्राप्त हुई है शक्ति जिसमें वैसे भुजाओं के वन को

अर्थात् बाहूवल को हठात् (घमन्ड से) आजमाने वाले उस रावण की क्या दशा हुई ? सुनिये । आपके पादांगुष्ठ का अग्र भाग यों ही हिल गया, और उससे कैलास जरा सा दवा, इतने ही में पाताल में भी ठहराव या टिकाव उसे नहीं मिला, और वह रावण नीचे से भी ठेठ नीचे लुडकता गया । अदृश्यमेव दुष्ट, अधूरा तरक्की पाकर मोह में फंस जाता है और उन्नति के अभिमान में उपकार को भूल बैठता है ।

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

कैलासे ! त्वत् अधिदसतौ अपि वलात् त्वत्-सेवा-समधिगतसारम् भुजवनम् विक्रमयतः अमुष्य अलभ्या प्रतिष्ठा अलस-चलित-अंगुष्ठ-शिरसि त्वयि पाताले अपि आसीत् । खलः उपचितः खलु मुह्यति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

केवल क्रीड़ा के निमित्त नन्दक नामक खड्ग को धारण करने वाले हे भगवन् ! आपके ही निवासभूत त्रिभुवन का आपको ही दान करने के लिए वलात् हस्तोदक को जो कि आपके कर कमल के सम्बन्ध से सौभाग्य विशेष को प्राप्त करने लगा था आपके हाथ में देते हुए उस राजा वलि की प्रतिष्ठा पाताल में भी फैल गयी, जब कि आपने तृतीय पग भापने के लिए लीलापूर्वक वलि के सिर पर अपना चरणांगुष्ठ रखा । ठीक है, दुर्जन अधिकार संपन्न होने पर निश्चित विवेक खो देता है ॥१२॥

यद्वद्धि सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती—

मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।

न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरित्वच्चरणयो-

र्नकस्याउन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे वरद ! यत् परिजनविधेयत्रिभुवनः बाणः परमोच्चैः अपि सुत्राम्णः ऋद्धिम् अधः चक्रे तत् त्वच्चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् न चित्रम् त्वयिशिरसः अवनतिः कस्यै उन्नत्यै न भवति ।

भावार्थ श्रीशिवपक्ष में—

विना मांगे ही अनधिकारी को भी दोनों हाथों से वरदान बांटते रहने वाले हे भोले बाबा ! जो कि त्रिलोकी को आज्ञाकारी सेवक बना रखने वाले बहादुर बाणासुर ने सबसे बहुत बड़ी चढ़ी हुई भी त्रिलोकी के राजा इन्द्र की संपत्ति को भी नीचा कर दिया । वह नीचा दिखला देना आपके चरणों में सेवाभाव से रहने वाले उस बाणासुर के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि आपके सामने शिर को नीचा करना कौनसी उच्च स्थिति के लिए नहीं हो सकता ? अर्थात् सर्वप्रकार की उन्नति के लिए होता है ॥१३॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

वरद परम ! सुत्राम्णः परिजनविधेयत्रिभुवनः बाणः अधः सतीम् अपि ऋद्धिम् यत् उच्चैः चक्रे तत् त्वत् चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् न चित्रम् त्वयि शिरसः अवनतिः कस्यै उन्नत्यै न भवति ॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे समस्त अभीष्ट वस्तुओं को देने वाले लक्ष्मीपते !
इन्द्र के त्रिभुवन को सेवक के समान वश करने वाले वाण ने
(दैत्यों के साथ युद्ध में) नीचे गयी हुई भी राज्यादि संपत्ति को
जो ऊंचा किया । वह आपके चरणों में प्रणाम करने वाले उस
इन्द्र के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है, आपके प्रति सिर
झुकाना भला किस उन्नति को देने वाला नहीं होता ॥१३॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा—

विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।

सकल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो—

विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे त्रिनयन ! अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपाविधे -
यस्य विषम् संहृतवतः तव कण्ठे यः कल्माषः सः किम् श्रियम् न
कुरुते अहो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः विकारः अपि श्लाघ्यः ॥

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे त्रिनेत्र ! अमृतमन्थनोत्पन्न विष से ब्रह्माण्ड भर के
अकाल मृत्यु की नौवत आ गई और उसके भय से भयभीत
हुए देव और दानवों पर कृपावश होकर समुद्र से निकले हुए
उस हलाहल कालकूट विष को संहार (आचमन करके हजम)
कर डालने वाले आपके कण्ठ पर जो काला दाग लग गया है,
वह क्या आपके गले की शोभा को नहीं बढ़ाता ? यह बात
नहीं किन्तु जरूर बढ़ाता रहा है उचित ही है कि ब्रह्माण्ड के

भय का नाश करने में लगे हुए सज्जनों का विकार भी प्रशंसनीय समझा जाता है, निंदनीय नहीं, उसने नीलकण्ठ नाम से प्रशंसा ही की ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

त्रिनयनः अकाण्ड-ब्रह्माण्ड-क्षय-चकित-देव-असुर-कृपाविधे-
यस्य, विषम् संहृतवतः तव सः कल्माषः कण्ठे श्रियम् न कुस्ते
भुवन-भय-भङ्ग-व्यसनितः विकारः अपि श्लाघ्यः ॥१४॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

तीनों लोकों के नयनवत् सबको आभासित करने वाले हे भगवन् ! असमय में ही ब्रह्माण्ड के भयभीत हुए, देव और असुर आदि के प्रति कृपापरवश हुए, (यज्ञबाराह रूप में अवतीर्ण हो पंकिल कर) सारे जल को सुखा देने वाले, आपका वह शरीर में लगा हुआ पंक (स्तोताओं से वर्णित किया हुआ) उनके कंठ में शोभा नहीं करता ? ऐसी बात नहीं, अर्थात् शोभा करता ही है । ठीक है जगत का भय दूर करना ही जिसका व्यसन है उसका विकार भी श्लाघ्य होता है ॥१४॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे

निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।

स पश्यन्तीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्-

स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिष्ठ पथ्यः परिभवः ॥१५॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे ईश ! यस्य विशिखाः सदेवासुरनरे जगति क्वचिद् अपि

नित्यम् असिद्धार्थाः न एव निवर्तन्ते, सः एव स्मरः त्वाम् इतर-
सुरसाधारणम् पश्यन् स्मर्तव्यात्मा अभूत् हि वशिषु परिभवः
पथ्यः न भवति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुं समर्थ सर्वेश्वर ! जिस
कामदेव के तीक्ष्ण वाण, देव, दानव और मानव से खिचोखींच
भरे पड़े, जगतभर में कहीं से भी हमेशा अपना काम किये बिना
लौटते ही नहीं, वही (देव, दानव, मानव आदि संसार के सभी
प्राणियों पर अपने तीखे तीरों से सदा विजय पाने वाला)
पुष्पधन्वा कामदेव आप (महादेव) को अन्यदेवताओं के समान
सामान्य देव समझता हुआ अर्थात् मतलबी देवताओं के वहकाने से
आप सर्वेश्वर या महेश्वर को भी एक मामूली देव समझकर
आप पर भी अपने काम, या वाणों के द्वारा विजय पाने के लिए
आपकी समाधि में विघ्न करता हुआ, आपके तृतीय (ज्ञान)
नेत्र से निकले ज्ञानाग्नि से जलमरा। ठीक ही तो है, अपने शरीर,
इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण आदि को वश में रखने वालों का
अनादर हितकर नहीं होता ।

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्ष—

इतरसुर ईश ! जयिनः यस्य विशिखाः सदेवासुरनरे जगति
क्वचित् अपि नित्यम् असिद्धार्थाः नैव निवर्तन्ते स्मर्तव्यात्मा सः
स्मरः त्वाम् पश्यन् साधारणम् अभूत् । परिभवः वशिषु न पथ्यः ॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

सर्वविलक्षण देवरूप हे भगवन् ! जिस विजयशील

(कामदेव) के बाण । देवता, असुर और मनुष्यों से युक्त जगत् में कहीं भी नित्य अपना कार्य सिद्ध किये बिना नहीं लौटते (शंकर के द्वारा दग्ध शरीर होकर) स्मृतिशेष हुआ भी वह कामदेव आपको देखकर आपके तुल्य हो आपके पुत्र प्रद्युम्न-रूप में उत्पन्न हो गया । हां, इतनी बात अवश्य थी कि सबको परिभूत करने वाला वह काम जितेन्द्रियों में प्रिय न रहा ॥१५॥

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
 पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
 मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
 जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे नटराज तब) पादाघाताद् मही सहसा संशयपदम् व्रजति, विष्णोः पदम् भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् द्यौः अनि-भृतजटाताडिततटा मुहुः दौस्थ्यम् याति, ननु त्वम् जगद्रक्षायै नटसि विभुता वामा एव ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे नटराज ! जब आप ताण्डव नृत्य करते हैं, तब आपके उठाये हुए पैर को ताल के साथ पृथ्वी पर रखते समय लगने वाले आघात से पृथिवी अचानक इतनी डामाडोल हो जाती है कि यहाँ गिरेगी कि वहाँ, उच्छलकर आकाश में उड़ जायगी, कि धसकर पाताल में बैठ जायगी ? इत्यादि संदेह स्थिति को प्राप्त हो जाती है । मानो खेलाड़ी के पैर से ठुकराया गया गेंद विष्णु

भगवान् के पद (ङग) आकाश में नाचते समय ऊपर उठाई हुई और इधर-उधर घूमायी जाती हुई भुजाओं के अपेड़ों से तारागण चोटें खाकर चटपटाते हैं अर्थात् भुजाओं के आघात से ऊपर आकाश में इधर-उधर उच्छलते हुए ग्रहों की भगदड़ मची है, और आकाश उपद्रव का अड़्डा बन गया है। स्वर्ग भी खुली हुई जटा का झटका किसी एक कोने किनार में लग जाने से बारम्बार अपनी स्थिति (धुरी) से छटककर इतस्ततः दुलक रहा है, यद्यपि आप दैत्यों को मोहकर उनके उपद्रवों से मही आदि जगत की रक्षा के लिए नृत्य करते हैं, तथापि वैभव (महत्त्व) विपरीत ही हुआ करता है, अर्थात् वैभवशालियों के खेल भी वैभवहीनों के दुःख का कारण बन जाते हैं ॥१६॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

आघातात् महीपात् सा सह संशयपदम् व्रजति, विष्णोः
पदम् भ्राम्यत्-भुजपरिघ-रुग्णग्रह गणम् (भवति)
द्यौः अनिभृत-जटा-आताडित-तटा दौस्थ्यम् याति, (तदा)
त्वम् जगत्-रक्षायै नटसि । ननु वामा एव विभुता ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

आघात करने वाले दुष्ट राजाओं से जब पृथ्वी आघात के साथ ही संशय में पड़ जाती है, जब यज्ञस्थान घूमते हुए राक्षसादि के भुजपरिघ से टूटे हुए सोमपात्रादि ग्रहगणों वाला हो जाता है, स्वर्गलोक का उच्चपद जब जटा आदि पाखण्ड वेष धारण करने वालों से आताडित होकर दुरवस्था को प्राप्त हो जाता है, तब आप जगत् की रक्षा के लिए नट के समान अवतार लेकर आते

हैं। यद्यपि आप विना अवतार लिये भी रक्षा करने में समर्थ हैं, तो भी आपकी लीला विलक्षण है ॥१६॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः

प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।

जगद्धीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि—

त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः यः वाराम् प्रवाहः
ते शिरसि पृषतलघुदृष्टः तेन जगद् जलधिवलयम् द्वीपाकारम्
कृतम् अनेन तव वपुः दिव्यम् धृतमहिम इति उन्नेयम् ॥

भावार्थ श्री-शिवपक्ष में—

इस श्लोक में गंगावतरणमिष से पूर्वोक्त विभुता का वर्णन है। समस्त आकाश को व्यापने वाला, और प्रतिविवित तारागणों की झिलमिल झिलमिल होने वाली चमचमाहट से अनेक गुणी बढ़ादी है फैन और बुदबुदों की शोभा जिसकी वैसा जो जल का प्रवाह है, वह आपके शिर पे जरा से जल कण के समान देखा गया, फिर जब भगीरथ राजा की प्रार्थना से आपने जटा झाड़ दी, और उस जलविन्दु को नीचे छिड़क दिया तब उसी बून्द ने धोधमार प्रचण्ड प्रवाह बनकर जगत् (पृथ्वी) को समुद्ररूप गोलाकार वलयकरधनी से चारों ओर घेर कर, बेट समान बना दिया, इससे आपका शरीर (स्वरूप) अलौकिक, अत एव महिमा (विभुता) को धारण करने वाला है, इस प्रकार

अनुमान करना चाहिए। भाव यह है कि आपका वैभव आपके दिव्यादिक सभी कल्याणगुण अनन्त हैं ॥१७॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

तारागण-गुणित-फेना-उद्गम-रुचिः वियद्व्यापी शिरसि यः वाराम् प्रवाहः ते पृषत-लघु-दृष्टः तेन जलधि-वलयम् जगत् द्वीपाकारम् कृतम् इति-अनेन एव दिव्यम् धृतमहिम तव वपुः उन्नेयम् ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

तारागणों से बहुगुणित फेन वाली गंगा की उत्पत्ति से शोभापूर्ण आकाशव्यापी शिरःस्थानीय ब्रह्मलोक में स्थित जो जलप्रवाह आपने विन्दु से भी छोटा देखा था, उसने समुद्र-रूपी वलय बनाकर पृथ्वी को द्वीपाकार कर दिया । इससे ही (वलि को छलने के लिए) आकाश में आविर्भावित आपका महिमामय (त्रिविक्रमरूपधारी) शरीर कैसा रहा होगा ? इसका अनुमान किया जा सकता है ॥१७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो

रथाङ्गे चन्द्राकौ रथचरणपाणिः शर इति ।

दिधक्षोस्ते कोयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-

विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

क्षोणी, रथः, शतधृतिः, यन्ता, अगेन्द्रः, धनुः, चन्द्राकौ, रथाङ्गे अथो रथचरणपाणिः शरः त्रिपुरतृणम् दिधक्षोः ते इति

अयम् आडम्बरविधिः कः ? खलु विधेयैः क्रीडन्त्यः प्रभुधियः
परतन्त्राः न ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

पृथ्वी को रथ, ब्रह्मा को सारथी, सुमेरु (सुवर्ण) पर्वत को धनुष, चन्द्रसूर्य को रथ के पहिये और चक्रपाणि विष्णु भगवान् को वाण (वनाकर) त्रिपुरासुर रूपी तृण को जलाने की इच्छा-वाले आपको, इस प्रकार इतने भारी इस आडम्बर को रचने की क्या आवश्यकता थी ? कुछ भी नहीं । जिसने विश्वविजयी कामदेव को भी संकल्पमात्र से जला डाला उसने शुष्कतृणरूप त्रिपुरासुर को जलाने की इच्छा से उतना बड़ा बखेड़ा खड़ा क्यों किया ?- यों ही मोज में आकर । असलियत तो यह है कि अपने हाथ के खिलौने से खेलती हुई प्रभावशालियों की बुद्धियां पराधीन नहीं हुआ करतीं, सर्वथा स्वतन्त्र होती हैं, उनके ऊपर "ऐसा क्यों किया और वैसा क्यों किया" इस प्रकार का नियोजन नहीं हो सकता ॥१८॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

क्षोणी, रथः शतधृतिः यन्ता अगेन्द्रः धनुः चन्द्राकौ रथाङ्गे
अथो रथचरणपाणिः शरः इति । त्रिपुरतृणम् दिधक्षोः ते अयम्
आडम्बरविधिः कः ? खलु विधेयैः क्रीडन्त्यः प्रभुधियः न
परतन्त्राः ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

पृथिवी के समान आपका रथ था, ब्रह्मा के समान सारथी था, पर्वतराज सुमेरु के समान धनुष था, चन्द्र और सूर्य के समान

चक्र थे, चक्रपाणि के समान अर्थात् अपनेतुल्य वीर्य वाला शर था । त्रिकुटशिखराश्रित लंकारूप तृण को जलाने के इच्छुक आपके लिए इस सब आडम्बर की क्या आवश्यकता थी ? हां, यह निश्चित है कि, स्वाधीन वस्तुओं से क्रीड़ा करने वाली प्रभु इच्छाएँ पराधीन नहीं होती ॥१८॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो—

र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।

गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा

त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) त्रिपुरहर हरिः ते पदयोः साहस्रम् कमलबलिम् आधाय तस्मिन् एकोने यद् निजम् नेत्रकमलम् उदहरत् असौ भक्त्युद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिम् गतः, (च) त्रयाणाम् जगताम् रक्षायै जागर्ति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

शिवभक्ति की महिमा ऐसी अनौखी है कि भक्ति करता है कोई एकाध ही, परन्तु फल मिलता है सारे संसार को । इसी रहस्य को भगवान् विष्णु के उदाहरण से समझाते हैं ।

हे त्रिपुरारे ! भगवान् विष्णु आपके चरणों में एक सहस्र (हजार) कमल पुष्पों की भेट को चढ़ाने का नियम लेकर पूजा करते रहते हैं (एक दिन) उन (कमलों) में से एक कमल कम हो जाने पर जो अपने नेत्रकमल को (उन्होंने अपने ही हाथ से)

उखाड़ा और नियमित संख्या को पूर्ण करने के लिए आपके चरणों में चढ़ाया, वही भक्ति का आवेग सुदर्शन चक्ररूप से परिणाम को प्राप्त हो गया, अर्थात् सुदर्शन चक्र बन गया, और तीनों लोकों की रक्षा करने के लिए (आज भी) सावधान है। तात्पर्य यह है कि तीव्र भक्ति से प्रसन्न होकर शिवजी ने विष्णु जी को सुदर्शन दिया, जो सभी लोकों की रक्षा में सदा तत्पर रहता है। इस प्रकार भक्ति की, एक विष्णु ने और सुदर्शन द्वारा रक्षारूप फल मिला सबको ॥१६॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

त्रिपुरहर ! हरिः ते पदयोः साहस्रम् नेत्रकमलम् कमल-
बलिम् आधाय यत् एकः अनेतस्मिन् निजम् उदहरत् असौ
भक्तिउद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिम् गतः, त्रयाणाम् जगताम्
रक्षायै जागति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्तिरूपी तीनों पुरों को हर कर मोक्ष प्राप्त करने वाले हे भगवन् ! इन्द्र ने आपके चरणों में अपने एक सहस्र नेत्रकमलरूपी कमलोपहार को अर्पित कर (अर्थात् सहस्र नेत्रों से आपके चरणों का दर्शन कर) अकेले ही स्वर्गलोक में अपने को ऊपर उठाया, वह भक्ति का उद्रेक ही ऐरावत, उच्चैः श्रवा आदि इन्द्र के सैन्य चक्रके रूप में परिणत होकर तीनों लोकों की रक्षा के लिए जागृत हो रहा है ॥१६॥

ऋतौ सुप्ते जाग्रच्चमसि फलयोगे ऋतुमतां

क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।

अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य ऋतुषु फलदानप्रतिभुवं

श्रुतौ श्रद्धां बध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

ऋतुसताम् ऋतौ सुप्ते फलयोगे त्वम् जाग्रत् असि कर्म
प्रध्वस्तम् पुरुषाराधनम् ऋते क्व फलति ? अतः त्वाम् ऋतुषु
फलदानप्रतिभुवम् सम्प्रेक्ष्य जनः श्रुतौ श्रद्धाम् बध्वा कर्मसु
दृढपरिकरः ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

यज्ञयागादि कर्म करने वाले सुकृतिजनों के किर्यारूप
यज्ञादि के समाप्त होते ही निवृत्त हो जाने पर भी फल देने के
लिए आप जागते हुए सदा सावधान रहते हैं, अर्थात् क्रियारूप
होने से यज्ञादि की समाप्ति के साथ ही निवृत्ति हो जाने के बाद भी
यज्ञादिकों के स्वर्गादिक फल आपके द्वारा ही अधिकारी जनों को
यथायोग्य अवसर पर बराबर मिलते रहते हैं । यदि कहा जाय कि
यज्ञादि कर्मों से धर्म या पुण्यादिरूप अपूर्व (अदृष्ट) उत्पन्न
होता है और उसी के अनुसार फल मिलता रहता है—इसमें
शिवजी की क्या जरूरत है ? तो ऐसा कहना उचित नहीं;
क्योंकि यज्ञादि कर्म तो नष्ट या निवृत्त हो गया और उससे उत्पन्न
हुआ अदृष्ट जड़ है, सो चेतन पुरुष (शिव) की आराधना के
बिना कहीं फल दे सकता है ? नहीं दे सकता इस कारण आपको
कर्मों के फल देने के लिए ठेकेदार सोच समझकर ही, अधिकारी
जन, वेद एवं वेदानुसारी शास्त्र में विश्वास को दृढ़ बनाकर
कर्मों के करते रहने में दृढ़ता के साथ कर्मर कसे तत्पर रहता है ।

पूर्वोक्त श्रद्धासहित की अपेक्षा श्रद्धारहित या अश्रद्धा से
किए गए यज्ञादि कर्मों का विपरीत फल '२१' वें श्लोक में
बताया है ॥२०॥

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

ऋतौ सुप्ते ऋतुमताम् फलयोगे त्वम् जाग्रत् असि पुरुषाराध-
नम् ऋते प्रध्वस्तम् कर्म क्व फलति ? अतः ऋतुषु त्वाम् फलदान-
प्रतिभुवम् सम्प्रेक्ष्य जनः श्रुतौ श्रद्धाम् बद्ध्वा कर्मसु दृढपरिकरः ।
भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

यागादि कर्म के ध्वस्त होने पर भी यज्ञ करने वालों को
स्वर्गादि फल प्राप्त कराने के निमित्त आप स्वयं जाग्रत रहते
हैं । भगवान् की आराधना के बिना प्रध्वस्त कर्म भला कैसे
फल दे सकता है ? अतः यागादि कर्मों में आपको फल देने में
उत्तरदायी समझकर लोक श्रुति में श्रद्धा रख कर्मों में प्रवृत्त होते
हैं ॥२०॥

क्रियादक्षो दक्षः ऋतुपतिरधीशस्तनुभृता—

मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।

ऋतुभ्रंशस्त्वत्तः ऋतुफलविधानव्यसनिनो

ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे शरणद ! क्रियादक्षः तनुभृताम् अधीशः दक्षः ऋतुपतिः
ऋषीणाम् आर्त्विज्यम् सुरगणाः सदस्याः ऋतुफलविधानव्य-
सनिनः त्वत्तः ऋतुभ्रंशः, ध्रुवम् कर्तुः श्रद्धाविधुरम् मखाः
अभिचाराय हि (भवति) ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

जिनका कहीं शरण (ठिकाना) नहीं, जिन्हें शरण (आश्रय)
देने के लिए कोई भी तैयार नहीं, उन भूत, प्रेत, सर्पादि अनधिकारी

को भी अधिकारी से भी अधिक शरण देने वाले दयाभण्डार हे भोलेभंडारी ! यज्ञादि क्रिया में निपुण, देहधारी प्रजा का पति, दक्षप्रजापति, (उस समय का राष्ट्रपति स्वयं) यज्ञ कराने वाला यजमान था, त्रिकालदर्शी भृगु आदि ऋषि लोग ऋत्विक् आदि की क्रिया करने वाले थे, और ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवगण माननीय सदस्य या खास आमन्त्रित दर्शक थे । तथापि यज्ञादि-कर्मफल देने के अठंग अभ्यासी आप ही के द्वारा दक्षयज्ञ का विनाश हुआ । क्यों ऐसा हुआ ? अवश्य ऐसा तो नहीं होना चाहिए था ? हाँ, यज्ञकर्ता की श्रद्धा के बिना किये गये यज्ञ विपरीत फलदायक ही हुआ करते हैं मतलब कि दक्ष के पास यज्ञ की सफलता के सभी साधन विद्यमान थे, केवल एक शिवश्रद्धा का अभाव था । वस इतने ही से यज्ञ अपने साथ उसे (दक्ष को) भी ले मरा ॥२१॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

शरणद ! क्रियादक्ष-उदक्षः तनुभृताम् अधीशः क्रतुपतिः ऋषीणाम् आर्त्तिज्यम्, सुरगणाः सदस्याः, (तथापि) क्रतु-फल-विधान-व्यसनिनः त्वत्तः क्रतुभ्रंशः (जातः) । ध्रुवम् श्रद्धाविधुरम् मखाः कर्तुः अभिचाराय हि ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे शरणागत को शरण देने वाले भगवन् ! क्रियादक्ष तथा उत्कृष्ट इन्द्रियों वाले स्वशरीरमात्र पोषी दैत्यों के या क्षीणों के पोषक दानियों के अधिपति राजा बलि यजमान थे, ऋषिगण ऋत्विज् थे, और देवों में गणनायोग्य महापुरुष सदस्य थे । फिर भी यज्ञ के फल देने में व्यसनी आप से ही यज्ञ का विध्वंस

हुआ । निश्चित है कि श्रद्धा के बिना किये गये यज्ञ कर्ता यजमान के नाश का ही कारण होते हैं ॥२१॥

मर्यादालोपी कुमार्गगामी चाहे ब्रह्मा भी हो तो उसे भी उचित सजा शिवजी के शासन से मिलती है इस बात का वर्णन करते हैं—

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं—

गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।

धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्नाकृतममुं

त्वसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे नाथ ! अभिकम् प्रजानाथम् स्वाम् दुहितरम् प्रसभम् रिरमयिषुम् रोहिद्भूताम् ऋष्यस्य वपुषा गतम् ते अपि धनुष्पाणेः मृगव्याधरभसः सपत्नाकृतम् दिवम् यातम् त्वसन्तम् अमुम् अद्य अपि न त्यजति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

देव, दानव, मानव आदि सभी के नाक में नाथ पहनाकर मर्यादा में रखने वाले, और सन्मार्ग में चलानेवाले हे पशुपते ! कामुक (कामदेव के आवेग में आविष्ट) ब्रह्मा जी ने अपनी सगी लड़की के साथ बलपूर्वक रति (रमण) करने की इच्छा की, लड़की संकोच और शर्म के मारे मृगी (हरिणी) बनकर भागने लगी तो ब्रह्मा जी भी मृग का रूप (शरीर) धारण कर पीछे दौड़े । उस निर्लज्ज ब्रह्मा को नसिद्धत देकर अपनी तफ-

टाई का हौश कराने के लिए आपने भी हाथ में धनुष उठाया, और मृगरूपधारी ब्रह्मा को लक्ष्य करके शिकारी की सिफत से एक अमोघ वाण छोड़ा। डरी हुई मृगी मृगशिरा नक्षत्र होकर आकाश में कूद गई, ब्रह्मा भी व्याध का तारा बनकर आकाश में पहुंचे। आपका वाण भी शीघ्र ही आर्द्रा नक्षत्र बनकर ब्रह्मा जी के पीछे एकदम लगोलग जा धमका, और 'अब छिदा यह छिदा' इस तरह भयभीत उस ब्रह्मा को आज (अभी तक) भी नहीं छोड़ता बराबर पीछा कर रहा है। शिक्षा कैसी रही? जैसा अपराध (पाप) था वैसी ही ॥२२॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

नाथ ! प्रसभम् अभिकम् रिरमयिषुम्, स्वाम् दुहितरम् ऋष्यस्य वपुषा (रिरमयिषुम्) रोहिद्भूताम् गतम् प्रजानाथम् सपत्नाकृतम् त्रसन्तम् दिवम् यातम् अपि अमुम् धनुष्पाणेः ते मृग-व्याध-रभसः अद्य अपि न त्यजति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे नाथ ! प्रकृष्ट सभा वाले, तथा चारों ओर सिरों वाले रावण को (सीताहरण के द्वारा) जो रमण कराना चाहता था, और रावण की अपनी पुत्रीतुल्य सीता को मायामृग के शरीर से आनन्दित करना चाहता था, वह हरिण शावक बना हुआ प्रजापीड़क मारीच आपके वाण से विद्ध होकर आकाश में चला गया, (और वहां मृगशीर्ष नक्षत्रपुञ्ज के रूप में चमकने लगा)। फिर भी धनुष्पाणि आपका मृगवधोत्साह आज भी मानों उसे नहीं छोड़ रहा है, (क्योंकि आज भी आकाश में व्याध के तीर से वह विद्ध होता दिखाई देता है) ॥२२॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्वाय तृणव-

त्पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।

यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-

दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥२३॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे पुरमथन ! पुष्पायुधम् स्वलावण्याशंसा धृतधनुषम् (हे) यमनिरत ! पुरः तृणवत् अह्वाय प्लुष्टम् दृष्ट्वा अपि (हे) वरद ! देहार्धघटनाद् यदि देवी त्वाम् स्त्रैणम् अवैति अद्धा बत युवतयः मुग्धाः ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे त्रिपुरदाहक ! पुष्पधन्वा कामदेव तो सर्वसौन्दर्यजननी जगदम्बा पार्वती के सौन्दर्यरूप शस्त्र से मैं महादेव जी को झट से जीत ,लूंगा इस आशा से धनुष उठाया था, परन्तु इन्द्रिय संयम में नित्यनिरन्तर रत रहने वाले हे योगीश्वर ! उसको अपने सामने तिनके की तरह तुरन्त भस्मीभूत हुए देखकर भी, हे वरदान दाता ! पार्वती पर कृपा करके अर्धनारीश्वररूप से अपने देह के अर्ध (वाम) भाग में कायम घटा (विठा) लेने से यदि पार्वती आपको स्त्रीवशवर्ती समझती है, भले समझे, क्योंकि महिलायें प्रायः भोलीभाली और समझहीन हुआ करती हैं । असल में आप स्त्रैण नहीं, जीतकाम ही हैं ॥२३॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

हे वरद ! अर्धघटना-दव स्वलावण्याशम् धृतधनुषम्

त्वाम् अह्नाय पुरः प्लुष्टम् युधम् अपि दृष्ट्वा पुरमथनपुष्पा यम-
निरतदेहा सा देवी यदि स्त्रैणम् एति अद्धा युवतयः मुग्धाः ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे अभीष्ट वस्तुओं के दाता ! हे सीता के विप्रलम्भ को
दावाग्नि के समान मिटाकर सम्भोग प्रदान करने वाले भगवन् !
अपने शौर्यादि गुणकृत सौन्दर्य में ही आशा रखने वाले, धनुष
धारण किए आपको शीघ्र ही लंकापुरी का दाह तथा युद्ध देख
कर पुष्प से भी अधिक सुकुमार यम, नियम में रत देहवाली
पतिव्रता वह देवी सीता यदि स्त्री के वश हुआ समझने लगती है;
तो ठीक है, युवतियां मुग्ध ही होती हैं ॥२३॥

श्मशानेष्व्राक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-

चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।

अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं—

तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥२४॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे स्मरहर ! श्मशानेषु आक्रीडा पिशाचाः सहचराः
चिताभस्म आलेपः अपि नृकरोटीपरिकरः स्रग्, एवम् तव
अखिलम् शीलम् अमङ्गल्यम् नाम भवतु । तथापि (हे) वरद !
स्मर्तृणाम् परमम् मङ्गलम् असि ॥

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे कामान्तक ! श्मशानों में आनन्द से खेलना, भूतप्रेतादि
खेलने वाले साथी, चिता में जले हुए मुरदों की राख, पूरे

शरीर में लगाने की पावडर, और मनुष्यों की खोपड़ियों से बनाई हुई गले की रुंडमाला (हार,) इस प्रकार आपका सम्पूर्ण (सारा) अमंगल वस्तुओं के इस्तेमाल का स्वभाव अमंगल-जनक भले ही हो, तो भी, हे वांछित वरदान दाता ! स्मरण करने वाले के वास्ते तो आप सबसे बढ़कर मंगलमयरूप ही हैं ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) वरद ! श्मशानेषु आक्रीडा, स्मरहर-पिशाचाः सहचराः, चिताभस्म-आलेपः त्वक् अपि नृ-करोटी परिकरः तव अखिलम् नाम स्मर्तृणाम् एवम् अमंगल्यम् शीलम् भवतु, तथापि परमम् मङ्गलम् असि ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे वरद ! श्मशानतुल्य गृहों में क्षणिक क्रीड़ा करते हैं, शास्त्रीय विवेक को हरने वाले पिशाचतुल्य पुत्र-भार्या आदि साथी बनाये हुए हैं, चिताभस्मतुल्य लेप से शरीर को लिप्त करते हैं, मुर्दों की खोपड़ी तुल्य माला धारण करते हैं । आपका परमफल हेतुक नाम स्मरण करने वालों का उपर्युक्त अमंगलशील भले ही हो, तथापि आप उनके लिए परम मंगल दाता हैं ।

(जैसे अजामिल आदि के लिए हुए थे) ॥२४॥

मनः प्रत्यक्चित्ते

सुविधमवधायात्तमरुतः

प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।

यदालोकयाह्लादं हृद इव निमज्यामृतमये

दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

यमिनः सविधम् आत्तमरुतः अपि मनः प्रत्यकचित्ते अव-
धाय यत् किम् तत्त्वम् अन्तः आलोक्य प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमद-
सलिलोत्सङ्गितदृशः इव अमृतमये हृदे निमज्ज्य आल्हादम्
दधति, तत् किल भवान् (एवास्ति) ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

यमनियमादि अष्टांग योगानुष्ठान में लगे हुए योगीलोग योग-
शास्त्रों में वर्णन की हुई विधि के अनुसार पूरक, कुंभक एवं
रेचकरूप बाह्याभ्यन्तर प्राणायाम द्वारा प्राणवायु (श्वास-
प्रश्वास) का निरोध करके, और मन को अन्तरात्मा में एकाग्र
करके जिस कोइ एक (अनिर्वचनीय एकरस निर्विशेष सच्चिदा-
नन्द परब्रह्मरूप) तत्त्व का अपने अन्दर ही अवलोकन (अनुभव)
करके रोमांचित हुए, और नेत्रों से आनन्दाश्रु के प्रवाह को
उछेलते हुए, मानो अमृत के सरोवर में निमग्न होकर परमानन्द
को प्राप्त होते हैं, वह निर्गुणनिराकार ब्रह्मतत्त्व भी आप ही तो
हैं ॥२५॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

यमिनः सविधम् आत्तमरुतः प्रत्यक् मनः चित्ते अवधाय
प्रहृष्यद्—रोमाणः प्रमद-सलिल-उत्सङ्गितदृशः यत् किमपि
तत्त्वम् आलोक्य ये अमृतम हृदे निमज्ज्य इव अन्तः आल्हादम्
दधति तत् भवान् किल ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

शम-दम आदि साधन से सम्पन्न परमहंस लोग शास्त्रीय
विधि से प्राणायाम कर प्रत्याहार द्वारा अन्तर्मुख किये मन

को हृदयाम्बुज प्रदेश में ध्यान और समाधि द्वारा केन्द्रित कर रोमांचयुक्त एवं आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र वाले होकर जिस वाचामगोचर तत्त्व का दर्शन कर, मानों अमृतमय सरोवर में डुवकी लगाकर आन्तरिक आह्लाद को (आनन्द को) प्राप्त करते हैं, वह तत्त्व आप ही हैं ॥२५॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-

स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता विभ्रतु गिरं

न विद्मस्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

त्वम् अर्कः असि, त्वम् सोमः, त्वम् पवनः, त्वम् हुतवहः, त्वम् आपः, त्वम् व्योम् त्वम् धरणिः, उ त्वम् आत्मा च, इति एवम् परिणताः त्वयि परिच्छिन्नाम् गिरम् विभ्रतु, तु वयम् इह तत् तत्त्वम् न विद्मः, यत् त्वम् न भवसि ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

आप सूर्य हैं, आप चन्द्रमा हैं, आप वायु हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथिवी हैं, और आप ही आत्मा भी हैं, इस प्रकार आप की अष्टमूर्तियों का वर्णन शास्त्रों में पाया जाता है । इन आठ ही मूर्तियों के प्रतिपादन में दृढ़ आग्रह रखने वाले विद्वान् लोग आपके प्रतिपादन में परिच्छिन्न (संकुचित) वाणी को भले बोलते रहें, परन्तु हम तो यहाँ उस वस्तु को नहीं जानते, जो कि आप न हों । भाव यह है कि देश, काल,

वस्तु सत्र कुछ आपका स्वरूप मात्र है, असीम अनन्त आपके स्वरूप में किसी प्रकार की परिच्छिन्नता सम्भव नहीं ॥२६॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

त्वम् अर्कः, त्वम् सोमः, त्वम् पवनः, त्वम् हुतवहः, त्वम् आपः, त्वम् व्योम, त्वम् उ धरणिः, त्वम् आत्मा असि, इति च एवम् परिणताः परिच्छिन्नाम् गिरम् बिभ्रतु, वयम् तु इह तत् तत्त्वम् न विद्मः यत् त्वम् न भवसि ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

आप आदित्य में स्थित पुरुष हैं, आप चन्द्रमा में स्थित पुरुष हैं, आप वायु में स्थित पुरुष हैं, आप अग्नि में स्थित पुरुष हैं, आप जल में स्थित पुरुष हैं, आप आकाश में स्थित पुरुष हैं, आप पृथ्वी में स्थित पुरुष हैं, आप विज्ञान आत्मा में स्थित पुरुष हैं, एवं विद्युत आदि में स्थित पुरुष हैं, इस प्रकार बुद्धि परिपाक वाले लोग भले ही परिच्छिन्न वाणी बोला करें, परन्तु हमें तो ऐसा कोई तत्त्व नहीं दिखाई देता जो आप न हों ।
(अर्थात् आप सभी कुछ हैं) ॥२६॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तिस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधतीर्णविकृति ।

तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे शरणद (शिवजी) ! ओं इति पदम् अकाराद्यैः त्रिभिः
वर्णैः व्यस्तम् त्रयीम् तिस्रः वृत्तिः त्रिभुवनम् त्रीन् सुरान् अथो

अपि त्वाम् अभिदधत् (चं) समस्तम् (ओं पदसमुदायवृत्त्या)
तीर्णविकृति तुरीयम् ते धाम अणुभिः अवरुन्धानम् गृणाति ।
भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

शरणार्थीमात्र को विना भेदभाव के शरण में लाने वाले हे
महाशरण्य शिवजी ! ओं यह पद, शब्द या नाम अकारादि
(आकार, उकार और मकार इन) तीन अक्षरों में विभक्त हुआ,
(पदार्थ रूप से) ऋक्, यजुः, व साम इन तीनों वेदों के रूप में,
जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अथवा उत्पत्ति, स्थिति और लय इन
तीनों अवस्थाओं के रूप में स्वर्ग, मृत्यु, पाताल इन तीनों लोकों
के रूप में, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवों के रूप में, और
स्थूल, सूक्ष्म, कारण ये तीन शरीर, विश्व तैजस, प्राज्ञ, ये तीन
शरीराभिमानी विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर ये तीन समष्टि—
अभिमानी, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव इत्यादि सर्व त्रिपुटियों
के रूप में भी आपको ही अवयवशक्ति द्वारा वाच्यार्थरूप से
कथन करता है, और अखण्ड अविभक्त हुआ वही ओं पदसमुदाय-
वृत्ती से विकार रहित शुद्ध, सर्वत्रिपुटियों से पर, आपके स्वरूप
को सूक्ष्म अर्धमात्रारूप ध्वनियों द्वारा लक्ष्य करता हुआ कथन
करता है । अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, आदि जो
कुछ है वह सब ओंकाराभिन्न शिव ही है ॥२७॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

हे शरणद ! त्रयो तिलः वृत्तिः त्रिभुवनम् अथो त्रीन्
सुरान् अपि अकाराद्यैः त्रिभिः वर्णैः अभिदधत्, ते तीर्णविकृति
तुरीयम् धाम अणुभिः ध्वनिभिः अवरुन्धानम् व्यस्तम् समस्तं
ओम् इति पदम् त्वाम् गृणाति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

शरणागतों को शरण देने वाले, हे भगवन् ! तीन वेदों को, जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्ति रूप तीन वृत्तियों को, और ब्रह्मा-विष्णु-शिव इन तीन देवों को, अकार-उकार-मकार रूप तीन वर्णों से बतलाने वाला और आपके सर्व विकारातीत चतुर्थ धाम को सूक्ष्म ध्वनियों से प्रतिपादन करने वाला व्यस्त तथा समस्त ॐ यह पद आपका वर्णन करता है ॥२७॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-

स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।

अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि

प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) देव ! भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः उग्रः सहमहान् अथ तथा भीमेशानौ इति यद् इदम् अभिधानाष्टकम्, अमुष्मिन् प्रत्येकम् श्रुतिः अपि प्रविचरति प्रियाय अस्मै धाम्ने भवते प्रविहितनमस्यः अस्मि ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे दिव्यता के भण्डार ! भव (जगत को पैदा करने वाला) शर्व (भक्तों को सुखी करने वाला), रुद्र (राक्षसों को रूलाने वाला, पशुपति (पशुअज्ञानी जीवों के पाशों को तोड़ने वाला), उग्र (अज्ञानादि दोषों को दग्ध करने वाला, तीक्ष्ण प्रचण्ड

ज्ञानाग्निरूप) ईश्वरों के भी ईश्वर महेश्वर, अथवा देवों के भी देव महादेव, भीम (पापियों के लिए भयंकर), तथा ईशान, (अपराधियों के लिए समर्थ शासक), इस प्रकार (पावनों के भी पावन,) जो ये आपके आठ नाम हैं इनमें से प्रत्येक नाम की वेद, शास्त्र (अपि शब्द से ब्रह्मा, विष्णु-इन्द्र-शेषशारदादि देवगण और नारदादि ऋषि लोग) भी खूब विचार तथा पूर्ण श्रद्धा पूर्वक स्तुति करते रहते हैं। इस तरह वेदादि जिनके एक-एक नाम की स्तुति में संलग्न हैं, उन परमप्रिय इस परम तेजस्वी ज्योतिःस्वरूप आप भगवान् शंकर को मैं भी मनसा-वाचा-कर्मणा साष्टांग नमस्कार करता हूँ ॥२८॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) देव ! भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः उग्रः सह महान् तथा भीमेशानौ इति यत् अभिधानाष्टकम् अमुष्मिन् प्रत्येकम् श्रुतिः अपि प्रविचरति, अस्मै प्रियाय धाम्ने भवते प्रविहित-नमस्यः अस्मि ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे देव ! जगत् को उत्पन्न करने वाला भव, जगत् का संहार करने वाला शर्व, जगत् को दण्डित कर रलाने वाला रुद्र, सब जीवों का पालक पशुपति, दुष्टों के लिए प्रचण्ड उग्र, महिमाशाली (महान्) और भयकारी भीम, तथा सबका ईश (ईशान) ये जो आठ यौगिक नाम हैं, इनमें से प्रत्येक के लिए श्रुति भी प्रमाण है। उस प्रियधाम आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२८॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदत्त दविष्ठाय च नमो ।
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।

नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमितिसर्वाय च नमः ॥२६॥

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे प्रियदत्त ! नेदिष्ठाय ते नमः, च दविष्ठाय नमः, हे
स्मरहर ! क्षोदिष्ठाय नमः च महिष्ठाय नमः, हे त्रिनयन !
वर्षिष्ठाय नमः च यविष्ठाय नमः, (एवम्) सर्वस्मै नमः च तत्
इदम् इति-सर्वाय नमः ।

हे एकान्तप्रिय ! समीप से - भी-समीप अन्तरात्मस्वरूप
आपको नमस्कार हो, और दूरात्सुदूर आपको नमन हो । हे
कामान्तक ! अणोरणीयान् आपको नमन हो, और महतो महीयान्
आपको नमन, हे त्र्यम्बक ! वृद्ध-से-भी वृद्ध कालातीत आपको
नमन, और युवान-से भी युवान, सदा युवा आपको नमन, एवं
सर्वरूप आपको नमन, और वह यह परोक्ष प्रत्यक्ष आदि सर्व
अवस्थाओं से अतीत अनिर्वचनीय आपको नमन हो नमन हो,
लाखों नमन हो ॥२६॥

सान्त्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) प्रियदत्त ! नेदिष्ठाय ते नमः, दविष्ठाय च ते नमः,
(हे) स्मरहर ! क्षोदिष्ठाय ते नमः, महिष्ठाय च ते नमः,
(हे) त्रिनयन ! वर्षिष्ठाय ते नमः, यविष्ठाय च ते नमः ।
सर्वस्मै ते नमः, तत्-इदम्-इति-सर्वाय च ते नमः

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

प्रिय वैषयिक सुखों को वैराग्योद्बोधन से नष्ट करने वाले हे भगवन् ! अत्यन्त समीपवर्ती आपको नमस्कार हो, अति-दूरवर्ती आपको नमस्कार हो । हे वासनाओं को हरने वाले भगवन् ! अत्यन्त छोटे आपको नमस्कार हो, अति महान् आपको नमस्कार हो । हे तीनों लोकों के नयनवत् सर्वार्थविभासक भगवन् ! अतिशयवृद्ध आपको नमस्कार हो, अतियुवा आपको नमस्कार हो । सर्वरूप आपको नमस्कार हो, परोक्ष-अपरोक्षरूप से अनिर्वाच्य सबके अधिष्ठानरूप आपको नमस्कार हो ॥२६॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः

प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।

जनसुखकृते सत्त्वोद्विक्तौ मृडाय नमो नमः

प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

विश्वोत्पत्तौ बहलरजसे भवाय नमः नमः, जन सुखकृते सत्त्वोद्विक्तौ मृडाय नमः नमः तत् संहारे प्रबलतमसे हराय नमः, नमः प्रमहसिपदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमः नमः ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

विश्व की उत्पत्ति के लिए पूर्ण रजोगुणी बने हुए ब्रह्मारूप आपको बारम्बार वन्दना हो, तमामजीवों को (अनन्त जीवों-को) सुखी करने के लिए सत्त्वगुण को बड़ा लेने पर विश्वपालक विष्णुस्वरूपधारी मृड (आप) को अनन्तवार नमस्कार ।

प्रलय का समय आने पर विश्व का संहार करने के लिये प्रबल तमोगुणी प्रचण्डमूर्ति रुद्ररूपधारी आपको भूयोभूयो नमस्कार, अविद्या के लेश से भी शून्य पूर्ण प्रकाशरूप मोक्षपद की प्राप्ति के लिए त्रिगुणातीत प्रपञ्चोपशम शिवस्वरूप आपको लाखों प्रणाम ।

हे शिवजी ! विश्व की उत्पत्ति, स्थिति एवं व्यवस्था (लय) इन अवस्थाओं के कारण रजोगुणी भव (ब्रह्मा), सत्त्वगुणी मृड (विष्णु), और तमोगुणी हर (रुद्र), ये सब नामरूप आप ही के होते हैं ।

वस्तुतः आपका स्वरूप इन सबसे रहित निस्त्रैगुण्य ही है ॥३०॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

विश्वोत्पत्तौ बहलरजसे भवाय नमः नमः, तत्संहारे प्रबलतमसे हराय नमः नमः, जनमुखकृते सत्त्वोद्विक्तौ मृडाय नमः, नमः, निस्त्रैगुण्ये प्रमहसि पदे शिवाय नमः नमः ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

विश्व की उत्पत्ति के निमित्त प्रचुर रजोगुण वाले ब्रह्ममूर्ति आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो । विश्व के संहार के निमित्त प्रबल तमोगुणवाले रुद्रमूर्ति आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो । सकल जनों के सुख के निमित्त सत्त्वगुण का उद्रेक होने पर विष्णु-मूर्ति आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो । त्रिगुणातीत अवस्था

में माया से अनभिभूतज्ञानज्योतिमयपद में स्थित परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥३०॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क चेदं
क च तत्र गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वद्विः ।

इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद ! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) वरद ! क्लेशवश्यम् कृशपरिणति इदम् (मम)
चेतः क्व ? च, च क्व गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वत् तव ऋद्धिः
इति चकितम् भक्तिः माम् अमन्दीकृत्य ते चरणयोः वाक्यपु-
ष्पोपहारम् आधात् ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे वरदायक ! पञ्चक्लेशाधोन सामर्थ्यहीन पंगु यह मेरा
चित्त कहाँ किस योग्य है ? किसी योग्य नहीं, निरा अयोग्य है,
और कहाँ तो तीनों गुणों की सीमा (पहुँच) से बाहर, भूत-
भविष्यवर्तमान इन तीनों कालों से पर, आपकी अनन्त असीम
महिमा इस अपनी अयोग्यता के भान से आपके सम्बन्ध में एक
शब्द भी कहने के लिए मैं भयभीत ही था, परन्तु आपके चरणों की
भक्ति ने ही मुझे उत्साह देकर योग्य बनाया, और मेरे द्वारा
आपके चरणों में महिम्नःस्तोत्र के वाक्य (श्लोक) रूप पुष्पों की
भेंट चढ़वायी) यह स्तोत्र आपकी भक्ति का ही
प्रताप है ॥३१॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) वरद ! क्व च कृशपरिणति क्लेशवश्यम् इदम् (मम) चेतः क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वत् ऋद्धिः । इति चकितम् माम् अमन्दीकृत्य भक्तिः ते चरणयोः वाक्य-पुष्पोपहारम् आधात् ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे वरदायक भगवन् ! कहाँ तो अपरिपक्व, अविद्या-अस्मिता आदि क्लेशों के वशीभूत यह मेरा चित्त है, और कहाँ आपकी गुणों की सीमा का उलंघन करने वाली अनन्त विभूतियाँ हैं । इस प्रकार भीत हुए मुझे भीतिरहित एवं निरलस बना कर भक्ति ने आपके चरणों में 'महिम्नःस्तोत्र-वाक्य' रूपी पुष्पों की भेंट चढ़वायी ॥३१॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे

सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं

तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) ईश ! सिन्धुपात्रे स्यात् असितगिरिसमम् कज्जलम्, सुरतरुवरशाखालेखनी (स्यात्) (च) ऊर्वी पत्रम्, यदि (उक्त-वस्तूनि) गृहीत्वा शारदा सर्वकालम् लिखति तत् अपि तव गुणानाम् पारम् न याति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे महेश ! आपके दिव्य एवं कल्याण गुणों को लेखवद्ध करने के लिए समुद्र तो दवात बने, काला पहाड़ स्याही बने, मोटे मोटे कल्पवृक्ष की शाखायें कलम बनें, और पृथिवी पत्र (कागज) बने, उन सब असम्भवित वस्तुओं को सम्भवित बनाकर स्वयं सरस्वती देवी खाना, पीना, सोना, मरना आदि सब कुछ छोड़कर सारा समय अजर अमर होकर लिखती रहें, तो भी आपके खास खास गुणों के भी पार को नहीं पा सकतीं । दूसरों की तो गुंजाइश ही क्या है ? ॥३२॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) ईश ! यदि सिन्धुपात्रे असित-गिरि-समम् कज्जलम् स्यात्, सुर-तरु-वर-शाखा लेखनी स्यात्, उर्वोपत्रम् स्यात्, (एतानि) गृहीत्वा शारदा सर्वकालम् लिखति, तदपि तव गुणानाम् पारम् न याति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे ईश ! यदि समुद्ररूपी दवात हो, उसमें नीलपर्वत के वरावर स्याही हो, कल्पवृक्ष की शाखा लेखनी हो, पृथिवी कागज हो, और उसे लेकर सरस्वती अनन्तकाल तक लिखती रहे, तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकती ॥३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरचितस्येन्दुमौले-

प्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।

सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो

रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

असुरसुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः प्रथितगुणमहिम्नः
निर्गुणस्य ईश्वरस्य एतत् रुचिरम् स्तोत्रम् सकलगणवरिष्ठः
पुष्पदन्ताभिधानः अलघुवृत्तैः चकार ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

असुरेन्द्र सुरेन्द्र तथा मुनीन्द्रों द्वारा पूजित चन्द्रमौलीश्वर
गुणों की महिमा से युक्त, वास्तव में तो निर्गुण महादेव जी के इस
मनोहारी 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' नाम के स्तोत्र को सर्वगन्धर्व
गणों में श्रेष्ठ 'पुष्पदन्त' नामक गन्धर्वराज ने बड़े (शिखरिणी
आदि) छन्दों में बनाया । सम्भवतः 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' यहाँ
समाप्त हो गया । आगे के श्लोक महात्म्य के ज्ञात होते हैं ॥३३॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

असुर-सुर-मुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः ईश्वरस्य प्रथितगुण-
महिम्नः निर्गुणस्य अलघुवृत्तैः रुचिरम् एतत् स्तोत्रम् सकलगुण-
वरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः चकार ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

असुर, देवता एवं मुनिन्द्रों से पूजित, चन्द्रमौलि शिव के
श्री ईश्वर, अनन्त गुणों की महिमा से पूर्ण होते हुए भी, निर्गुण विष्णु
भगवान् के इस स्तोत्र को, (जो कि महान चरित्रों से युक्त है)
सकल गुणों से वरिष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्वराज ने रचा
है ॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेत—

पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३४॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

यः पुमान् शुद्धचित्तः परमभक्त्या धूर्जटेः अनवद्यम्
एतत् स्तोत्रम् अहः अहः पठति, सः अत्र प्रचुरतरधनायुः
पुत्रवान्, च कीर्तिमान् भवति, तथा (देहत्यागानन्तरम्) रुद्रतुल्यः
(भूत्वा) शिवलोके (महिमाम् प्राप्स्यति) ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

जो मनुष्य चित्त को पवित्र रखके परमभक्तिपूर्वक शिवजी के
परमपावन इस स्तोत्र का रोज पाठ करेगा । वह यहाँ इस
लोक में अति अधिक धन-धान्य एवं आयु को पाकर पुत्रादि
कुटुम्ब वाला, और इज्जत वाला होगा, तथा (देहत्यागानन्तरम्)
शिवसदृश होकर शिव लोक में महिमा को प्राप्त होगा ॥३४॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

इदम् अनवद्यम् स्तोत्रम् धूर्जटेः परमभक्त्या शुद्धचित्तः
यः पुमान् अहः अहः पठति, सः शिवलोके रुद्रतुल्यः भवति तथा
अत्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमान् च भवति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

विष्णु के इस निर्दोष स्तोत्र को शिव की भी परम भक्ति
से जो शुद्धचित्त मनुष्य प्रतिदिन पढ़ता है, शिवलोक में (मङ्गल-

मय विष्णु लोक) वह रुद्र के समान हो जाता है, और यहाँ प्रचुर धन वाला, दीर्घायु, पुत्रवान् एवं कीर्तिमान् होता है ॥३४॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानंयागादिकाः क्रियाः ।

महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३५॥

सान्त्वयपदच्छेदः—उभयपक्षे—

दीक्षा दानम् तपः तीर्थम् ज्ञानंयागादिकाः क्रियाः (हे शंकर ! वा हे विष्णो ! ते) महिम्नस्तवपाठस्य षोडशीम् कलाम् न अर्हन्ति ।

भावार्थ दोनों पक्षों में—

दीक्षा लेना, दान देना, तप करना, तीर्थसेवन, और शास्त्र ज्ञान याग आदि सकल क्रियायें हे शंकर ! अथवा (हे विष्णु !) आपके महिम्नस्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला के भी योग्य नहीं हो सकतीं ॥३५॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।

अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥३६॥

सान्त्वयपदच्छेदः—

पुण्यम् गन्धर्वभाषितम् मनोहारि शिवम् ईश्वरवर्णनम् इदम् स्तोत्रम् आसमाप्तम् (अभूत्) ।

भावार्थ—

पवित्र श्रीपुष्पदन्तप्रणीत अनुपम, मनोहर, मंगलमय हरिहर

वर्णन से परिपूर्ण यह स्तोत्र '३४' श्लोक तक समाप्त हो गया ।
अथवा समाप्ति तक पुण्यम्, अनौपम्यम्, मनोहारि शिवम् और
ईश्वरवर्णनम् है ॥३६॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।

अघोरात्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३७॥

सान्त्वयपदच्छेदः—

महेशात् अपरः देवः न अस्ति, महिम्नः अपरा स्तुति न,
अघोरात् अपरः मन्त्रः न, (च) गुरोः परम् तत्त्वम् न (अस्ति) ।
भावार्थ—

महेश्वर से बढ़कर और कोई देव नहीं है, महिम्नस्तोत्र से
बढ़कर अन्य कोई स्तोत्र नहीं है, अघोर (प्रणव) मन्त्र से
बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है, और गुरु से श्रेष्ठ कोई तत्त्व
नहीं है ॥३७॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः

शिशुशशधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।

स खलु निजमहिम्नो अष्ट एवास्य रोषा—

स्तवनमिदमकार्षीदिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३८॥

सान्त्वयपदच्छेदः—

शिशुशशधरमौलेः देवदेवस्य दासः कुसुमदशननामा गन्धर्व-
राजः सः अस्य रोषात् निजमहिम्नः अष्टः (तु) दिव्य-दिव्यम् इदम्
महिम्नः स्तवनम् अकार्षीत् एव खलु ।

भावार्थ—

जटामुकुट में बाल (द्वितीया) चन्द्र को धारण करने वाले देवाधिदेव महादेव जी का भक्त पुष्पदन्त नामक एक था गन्धर्वों का राजा । वह शिवजी के कोप से अपनी महिमा (अदृश्य रहने की शक्ति, तिरोधान विद्या अर्थात् नजरबन्दी) से च्युत हो गया, परन्तु उसने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए दिव्यातिदिव्य इस शिवमहिमा के स्तोत्र को बनाया, और भूतभावन भगवान् शंकर की कृपा से अपनी विद्याशक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया, ऐसा सुना जाता है ॥३८॥

सुखरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं

पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।

व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः

स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

सान्वयपदच्छेदः—

सुखरमुनिपूज्यम् स्वर्गमोक्षैकहेतुम् अमोघम् पुष्पदन्त-
प्रणीतम् इदम् स्तवनम् मनुष्यः प्राञ्जलिः अन्यचेताः न यदि
पठति (तु परिपूर्णप्रारब्धभोगेषु) किन्नरैः स्तूयमानः शिव-
समीपम् व्रजति ।

भावार्थ—

बड़े-बड़े देव और मुनि लोग जिसमें पूज्यभाव (श्रद्धा) रखते हैं, स्वर्ग और मोक्ष का मुख्य कारण कभी निष्फल नहीं जाने वाला पुष्पदन्त रचित इस स्तोत्र का कोई भी मनुष्य हाथ

जोड़कर शिव से अन्य में चित्त न रखकर यदि पाठ करेगा, तो प्रारब्धभोग पूरे होने पर किन्नरों द्वारा मार्ग में सत्कार को पाता हुआ शिवजी के पास पहुंच जाता है । केवल पाठ करने से ही शिवसामीप्य की प्राप्ति होती है, तो फिर समझ बूझकर पाठ करने पर तो शिवसारूप्य भी मिल ही जायगा ॥३६॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन

स्तोत्रेण किन्विषहरेण हरप्रियेण ।

कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन

सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४०॥

सान्वयपदच्छेदः—

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन किन्विषहरेण हरप्रियेण समाहितेन स्तोत्रेण कण्ठस्थितेन पठितेन भूतपतिः महेशः सुप्रीणितः भवति ।

भावार्थ—

श्री पुष्पदन्त के मुखकमल से निकले हुए कायिक वाचिक मानसिक आदि सब प्रकार के पापों को हर लेने वाले भगवान् शंकर को सबसे अधिक प्रिय लगने वाले, और समान भाव से सबका हित करने वाले, इस स्तोत्र को कण्ठस्थ करके हर-हर्मेंश पाठ करते रहने से पञ्चभूतों के या जड़चेतन समुदायरूप विश्व के पति-नाथ शंकर भगवान् खूब खुश हो जाते हैं, और पाठ करने वाले भक्त को ज्ञान देकर कृतार्थ कर देते हैं ।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।

अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४१॥

सान्वयपदच्छेदः—

इति एषा वाङ्मयी पूजा तेन (पुष्पदन्तेन) श्रीमच्छंकर-
पादयोः अर्पिता देवेशः सदाशिवः मे प्रीयताम् ।

भावार्थ—

इस प्रकार यह शिवमहिम्नस्तोत्ररूप) शब्दमयी भेंट
श्रद्धाञ्जलि उस (पुष्पदन्त) ने श्रीशंकर भगवान् के चरणों में
समर्पित की और उसके समर्पण करते ही देवदेव नित्यमंगलमय
महादेव जैसे उसके ऊपर प्रसन्न हो गये थे, वैसे ही मेरे ऊपर
भी प्रसन्न हो जायं ॥४१॥

यदक्षरं पदं अष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।

तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥४२॥

सान्वयपदच्छेदः—

(हे) देव ! यद् अक्षरम् च पदम् अष्टम् भवेत् (च) यद्
मात्राहीनम्, तत् सर्वम् क्षम्यताम्, (हे) परमेश्वर ! प्रसीद ।

भावार्थ—

हे दयालो ! पाठ करते समय प्रमादवश जो कोई अक्षर
और पद (शब्द) अशुद्ध उच्चारण हो गया हो, तथा जो कोई
मात्रा की कमी रह गई हो, अथवा कहीं कांवा छूट गया हो, तो

उस सबको अबोध वालक जान के क्षमा कीजिए, और हे प्रभो !
आप सदा प्रसन्न रहे । वस, आपकी प्रसन्नता में ही मेरी प्रसन्नता
है ॥४२॥

हरिः ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

सान्वयपदच्छेदः—यथाश्रुतः—

भावार्थ—

वह परमात्मा पूर्ण है, यह जगत् भी पूर्ण है । उस पूर्ण
परमात्मा से ही यह जगत् उत्पन्न हुआ है । उस पूर्ण परमात्मा की
पूर्णता ग्रहण कर लेने पर पूर्ण परमात्मा ही शेष रह जाता है ।

अध्यात्मिक शान्ति हो । आधिदैविक शान्ति हो । आधि-
भौतिक शान्ति हो । अन्दर में शान्ति हो, बाहर भी शान्ति हो ।
भूत, भविष्य वर्तमान में शान्ति हो । सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो ।



अथ शिवनामावलि:

ॐ महादेव शिव शंकर शम्भो, उमाकान्त हर त्रिपुरारे ।
मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन्, गंगाधर मृड मदनारे ॥
हर शिव शंकर गौरीशं, वन्दे गंगाधरमीशं ।
रुद्रं पशुपतिमीशानं, कलये काशीपुरनाथं ॥

ओं — हे ओं, महादेव—हे महादेव ! शिव ? हे शंकर ?
उमाकान्त — हे पार्वतीपते ! (हे) हर ? त्रिपुरारे — हे त्रिपुरा-
सुरका वध करने वाले मृत्युञ्जय — हे मृत्युको जीतने वाले !
वृषभध्वज—हे वृषभध्वज ! वृषभ शब्दका अर्थ है धर्म एवं बैल
और ध्वज कहते हैं—ध्वजा एवं वाहनको । शिवजी की ध्वजा में
धर्मके सूचक वृषभका चिन्ह है, अतः शिवजी वृषभध्वज (धर्म-
ध्वजी) हैं । सत्त्वगुणका पूर्णविकास होने पर ही धर्म लाभ
होता है, पशुओं में सबसे अधिक सत्त्वगुणका विकास गोजाति
में हुआ है, इसलिए धर्मका प्रतीक वृषभ (बैल) हर शिवजी
का वाहन है । भाव यह है कि शिवजी धर्माचरण में ही आरूढ़
रहते हैं, अधर्म में पग धरते ही नहीं । भव भक्तात्माओं के
धर्ममय हृदयारविन्दोंमें भवानीके सहित सदा वास करनेवाले
हैं—यह भी 'वृषभध्वज' का तात्पर्य है । शूलिन्—हे त्रिशूलधारी !
त्रिताप या त्रिगुणमय जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं
से भी पर, आनन्दमय या त्रिगुणातीत तुरीया अवस्था में सदा
स्थित रहते हैं—यही शिवजीका 'शूलिन्' (त्रिशूलधारी) होना
है । (हे) गंगाधर—? मृड—हे स्तुत्य ? मदनारे—हे कामदेवके
नाशक ? (हे) हर ! (हे) शिव ! (हे) शंकर ! गौरीशम्—
पार्वतीपति; गंगाधरम्—गंगाधर; ईशम्—ईश्वर (आप) को,

वन्दे—वन्दना करता हूँ । रुद्रम्—रुद्र । दीन दुखियोंकी दुर्दशा पर रुदन कर, द्रुतगति से उनके अश्रुओंको आनन्दाश्रुओंमें परिणत कर डालते हैं, अतः शिवजी 'रुद्र' कहलाते हैं । 'रु' रुलाते हैं । पश्चात्ताप कराके सरल बनाते हैं (द्र) कुत्सितगति (अत्याचारियों) को, इस वास्ते भी शिव रुद्र कहलाते हैं । पशुपतिम्—पशु (पापरूप या पाश वद्ध जीव) को पाप या पाश मुक्त करनेवाले, और ईशानम्—सब पै शासन करनेवाले, (और) काशीपुरनाथम् — काशीपुरके नाथ; (शिवजी त्रिगुणरूप त्रिशूलपर विश्वरूप काशीपुरीको वसाकर विश्वनाथ हुए हैं और जब तक त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें शिवकी सत्ता रहेगी, तब तक विश्वरूप काशीपुरका नाश नहीं हो सकता । आपका मैं हृदयसे; कलये—रटन करता हूँ ।

जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशङ्कर जय शम्भो ।

जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशङ्कर जय शम्भो ॥

(हे) शम्भो ! जय— (आपका) जय हो, शम्भो जय (हे) शिव ! (हे) गौरीशंकर ! शम्भो जय, पुनरपि 'जय शम्भो' इत्यादि पूर्ववत् ।

शिव शिवेति शिवेति शिवेतिवा
हर हरेति हरेति हरेतिवा
भव भवेति भवेति भवेतिवा
मृड मृडेति मृडेति मृडेतिवा ।

भज मनः शिवमेव निरन्तरम् ।

जप मनः शिवमेव निरन्तरम् ।

रट मनः शिवमेव निरन्तरम् ।

स्मर मनः शिवमेव निरन्तरम् ।

शिवशिव, इति—इस प्रसार, शिव, शिव, इति—इति—
इसीतरह, वा—अथवा, हर हर इति—इस रीति से, हर, हर,
इति—इति—इस रीतिसे ही, वा—या भव, भव इति—इस
प्रकार; मृड मृड, इति—इति—इसी प्रकार से भव—हे मेरे
मननशील मन ! शिवम्—शिवजीका; एव—ही; निरन्तरम्—
अर्हनिश (एक क्षणका भी आलस्य किये बिना) भज—भजन
करता रह ।

ओं नमः पार्वतीपतये हर हर महादेव

ओं नमो नारायणाय ।

ॐ शन्नो मित्रः, शं वरुणः । शन्नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुक्मः, नमो ब्रह्मणे,
नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं
ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि ।
तन्मामवतु, तद्वक्तारमवतु, अवतु माम्, अवतु वक्तारम् ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

(ऋग्वेद १।६०।६, कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयारण्यक ७।१।१, तैत्तिरीयोपनिषत् १।१।६) ।

ओं=हे मंगलमय ओंकाररूप परमात्मन् ? मित्रः= दुनियां के दोस्त, प्राण के अधिष्ठाता, दिन एवं सौरमण्डल के स्वामी, मित्र देवता-अर्थात् सूर्य नारायण, नः=हमारे लिए, शम् (भवतु)=आनन्ददाता हों, वरुणः=अपान के अधिष्ठाता, रात्री और मेघमंडल के मालीक, वरुण देवता, (नः=हमें) शम् (भवतु)=शान्ति प्रदान करें, अर्यमा=पितृदेव या चक्षुः आदिके अध्यक्ष, अर्यमदेवता, नः=हम सबको, शम्=कल्याण, भवतु=देवें, इन्द्रः=बलवाहूके अधिष्ठाता तथा स्वर्गके अधिपति देवराज, या इन्द्रियोंके अधिपति आत्मदेव हमारे अपने आप, नः=हमारे लिए, शम्=सुखकारी, (भवतु)=हों, बृहस्पति=वाणीके प्रेरक तथा बुद्धिके अध्यक्ष देवगुरु बृहस्पति जी, (नः, शम्, भवतु)=हमारा मंगल करें, उरुक्रमः=त्रिवि-क्रमरूपसे विशाल डगोंवाले, विष्णुः=पैरोंकी अधिष्ठातृदेवता या व्यापक परमात्मा, नः, शम् (भवतु)=हमारा कल्याण करें । ब्रह्मणे=उपर्युक्त समस्त देवताओंके आत्मस्वरूप ब्रह्मको, नमः=(शरीरवाणी एवं मनसे) नमस्कार है, वायो=हे वायुदेव (सूत्रात्मा प्राणके रूपसे सभी प्राणियोंमें व्याप्त वायुमय परमेश्वर) । ते=तुम्हें, नमः=नमस्कार हो । त्वम्=तुम, एव=ही प्रत्यक्षम्=संपूर्ण प्राणियों के प्राणरूप में प्रत्यक्ष प्रतीत होनेवाले, ब्रह्म=ब्रह्मा, असि=हो, (अतः) त्वाम्=तुम्हें, एव=ही प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष, ब्रह्म=ब्रह्म के नामसे (मैं) वदिष्यामि=पुकारता रहूँगा, ऋतम्=प्राणिमात्र

के हितकर साधनोंके ऋतनामसे भी, वदिष्यामि=तुम्हीं को पुकारा कहूँगा । सत्यम्=यथार्थ भाषणरूप सत्यके अधिष्ठातृ-देवता भी, वदिष्यामि=तुम्हींको कहा कहूँगा । तत्=वह (सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, ओंकारवाच्य, परब्रह्म, परमात्मा), माम्=मेरी (मुझे हितकर साधनोंका अनुष्ठान करनेकी, सत्य भाषण करनेकी, भाषणके अनुसार आचरण करनेकी शक्तिप्रदान करके जन्म-मरणरूप संसार रोगसे) अवतु=रक्षा करें, और तत्=वही परमेश्वर, वक्तारम्=(मेरे आचार्यको पूर्वोक्त सत्य साधनोंका उपदेश देनेकी, सत्यका प्रचार करनेकी शक्ति देकर उन मेरे) आचार्य देवकी भी, अवतु=रक्षा करें । (वह परमात्मा) अवतु=रक्षा करें, माम्=मेरी, अवतु=रक्षा करें, वक्तारम्=(मेरे) गुरुदेवकी । यहाँ रक्षाकी प्रार्थना दुहराई गयी है, यह रक्षामें आतुरताका अतिशय, प्रदर्शित करने के लिए है । ओं=हे सत्-चित्-आनन्दरूप शान्तिः शान्तिः शान्तिः=आप शान्तिस्वरूप हैं, आप ही के स्मरणसे वास्तविक शान्ति मिल सकती है । हमारे (प्राणिमात्रके) आध्यात्मिक अधिभौतिक एवं अधिदैविक तीनों तापों की शान्ति हो ।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः, भद्रं पश्येमाक्षभिर्यज्ञत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनुभिः, व्यशेम देवहितं यदायुः । स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

(ऋग्वेद १।८६।८, ६, सामवेद उ० २१।१।२१० अथर्ववेद प्रश्न-मुंडक-माण्डूक्यउपनिषद्,) ।

ओं=हे ओं के अंगभूत, देवाः=(इन्द्रिय और बुद्धि आदि के संचालक) देवो ! (हमारी इन्द्रिय आदिको दैवी मार्गमें चलनेकी शक्ति दीजिए, ताकी हम सभी मनुष्य) कर्णेभिः=कानोंसे, भद्रम्=भले-भले (मंगलमय) वचनों को ही, शृणुयाम=सदा सुनते रहें (बुरी-बुरी, निन्दा, चुगली या पाप की बातें, कभी न सुनें) अक्षभिः=आंखोंसे भी, भद्रम्=भलाई (मंगलमय दृश्यों) का ही, पश्येम=दर्शन करें (अमंगल एवं पतनकारी दृश्योंकी ओर हमारी दृष्टि कभी आकर्षित न होने पाये) । यत्रजाः=(हम सब) यजन कार्यमें समान बनें । अंगैः=(हमारा प्रत्येक) अंग एवं, तनुभिः=संपूर्ण शरीर, स्थिरैः=सुदृढ़ तथा सुपुष्ट रहें, (और वह भी इसलिए कि हम इनके द्वारा) तुष्टुवाँसः=ईश्वरकी स्तुति करते रहें । (हम वैसी) आयुः=आयुका, व्यश्येम=उपभोग करें यद्=जो, देवहितम्=देवकार्यमें व्यतीत होती हो (और वैसी आयुका उपभोग कदापि न करें जो भोगविलास या प्रमादादिमें बीतनेवाली हो) वृद्धश्रवाः=जिनकी सुकीर्ति सर्वत्र व्याप्त है, वे, इन्द्रः=परमैश्वर्यशाली इन्द्र, नः=हमारा, स्वस्ति=कल्याण, (दधातु) करें । विश्ववेदाः=समस्त विश्वके ज्ञाता, पूषा=पोषणकर्ता सूर्यदेव, नः=हमें, स्वस्ति-सुपुष्टि (दधातु) देते हुए सदा हमारा भला करते रहें । अरिष्टनेभिः=अरिष्टो (आफतों) के नेमिः (निवारक सुदर्शनचक्रसमान घातक), ताक्ष्यं=गरुड-देव, नः=हमारे अहितों का नाशकर, स्वस्ति=(दधातु)

हमारे हितोंका पालन-संवर्धन करते रहें । वृहस्पतिः=देवताओं के गुरु और मनुष्योंकी बुद्धिके मालिक वृहस्पतिजी महाराज, नः=हमें, स्वस्ति सु—अस्ति=सुन्दर अस्तित्व, (कल्याणमय जीवन) दधातु=देवे । ओं = हे तीनों तापोंकी शान्तिके सागर ओं, शान्तिः शान्तिः शान्तिः=आप जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में संपूर्ण शान्तस्वरूपसे विराजमान रहें ।

ॐ सह नावतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

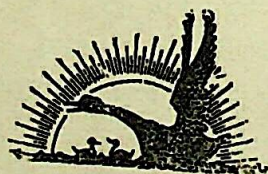
ओं=हे सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन परमात्मन् ? (आप कृपया) नौ=हम दोनों (गुरुशिष्य) का, सह=साथ-ही-साथ, (बाह्य विधनोंसे) अवतु=रक्षण करें । नौ=हम दोनोंका, सह=साथ-ही-साथ, (अन्तर शत्रुओंसे) भुनक्तु=पालन करें, (हम दोनों) सह=साथ ही; (शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक) वीर्यम्=सामर्थ्य, करवावहै=प्राप्त करें । नौ =हम दोनों का, अधीतम्=अध्ययन अध्यापन, (अज्ञानान्ध-कारको दूर करनेके लिए) तेजस्वि=तेजोमय, अस्तु=हो; (अर्थात् हम दोनोंका पठन-पाठन निष्फल न हो जाय), माविद्विषावहै=हम दोनों परस्पर विद्वेष न करें, किन्तु आत्मप्रेम रखते हुए एक-दूसरे के स्नेह सूत्रमें जीवन पर्यन्त बंधे रहें ।

ओं=हे निर्गुणनिराकार, सगुण निराकार, सगुणसाकार, परमेश्वर ! शान्तिः=आध्यात्मिक शान्ति हो; शान्तिः=

आधिभौतिक शान्ति हो; शान्तिः = आधिदैविक
शान्ति हो ।

शंकरं शंकराचार्यं केशवं वादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

—: इति शम् :—



श्रीपरमात्मने नमः

ॐ शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यातव्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

अथ श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात् ।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥
नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभूते ।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा धर्मनिशेषेण पावनानि च सर्वशः ।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ २ ॥
को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।
किं जपन्मुच्यते चन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ ४ ॥

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।
 ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५ ॥
 अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
 लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६ ॥
 ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ।
 लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७ ॥
 एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।
 यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चयेन्नरः सदा ॥ ८ ॥
 परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
 परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ९ ॥
 पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
 दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १० ॥
 यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
 यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुररेव युगक्षये ॥ ११ ॥
 तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।
 विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १२ ॥
 यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः ।
 ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ १३ ॥
 ओं विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
 भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १४ ॥
 पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ।
 अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५ ॥
 योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।
 नारसिंहवपुः श्रीमान्केशवः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥
 सर्वः शर्वः शिवः स्थाणभूतादिनिधिरव्ययः ।

सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥१७॥
 स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।
 अनादिनिधनो धाता विधाता धातुस्तमः १८॥
 अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।
 विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥१९॥
 अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।
 प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मंगलं परम् ॥२०॥
 ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।
 हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥२१॥
 ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ।
 अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥२२॥
 सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।
 अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥२३॥
 अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ।
 वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिः सूतः ॥२४॥
 वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मात्तम्मितः समः ।
 अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥२५॥
 रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।
 अमृतः शाश्वतस्थानुर्वरारोहो महातपाः ॥२६॥
 सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ।
 वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित्कविः ॥२७॥
 लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।
 चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥२८॥
 भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जंगदादिजः ।
 अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥२९॥

उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरुजितः ।
 अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥३०॥
 वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ।
 अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥३१॥
 महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।
 अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥३२॥
 महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।
 अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविन्दां पतिः ॥३३॥
 मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।
 हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥३४॥
 अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः संधाता संधिमान्स्थिरः ।
 अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥३५॥
 गुरुर्गुह्यतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।
 निमिषोऽनिमिषः लग्नी वाचस्पतिरुदारधीः ॥३६॥
 अग्रणीग्रमिणीः श्रीमान्धातुः नेता समीरणः ।
 सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥३७॥
 आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः सम्प्रमर्दनः ।
 अहः संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥३८॥
 सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ।
 सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जन्तुर्नारायणो नरः ॥३९॥
 असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।
 सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥४०॥
 वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।
 वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥४१॥
 सुभजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।

नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥४२॥
 अजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।
 ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥४३॥
 अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः ।
 औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥४४॥
 भूतभव्यभवज्ञाथः पवनः पावनोजलः ।
 कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥४५॥
 युगादिकृद्यगावर्तो नैक्रमायो महाशनः ।
 अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥४६॥
 इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः ।
 क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥४७॥
 अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।
 अयां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥४८॥
 स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।
 वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरंदरः ॥४९॥
 अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
 अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥५०॥
 पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।
 महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥५१॥
 अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।
 सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान्समितिञ्जयः ॥५२॥
 विश्वरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।
 महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥५३॥
 उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।
 करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥५४॥

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।
 परद्विः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शभेक्षणः ॥५५॥
 रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः ।
 वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥५६॥
 वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।
 हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥५७॥
 ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
 उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥५८॥
 विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ।
 अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥५९॥
 अर्निविष्णुः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः ।
 नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥६०॥
 यज्ञ इज्यो महेज्यश्च ऋतुः सत्रं सतां गतिः ।
 सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥६१॥
 सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ।
 मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विवारणः ॥६२॥
 स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ।
 वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥६३॥
 धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ।
 अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥६४॥
 गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।
 आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥६५॥
 उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
 शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥६६॥
 सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ।

विनयो जयः सत्यसंधो दाशार्हःसात्वतां पतिः ॥६७॥
 जीवो विनयिता साक्षी सकुन्दोऽमितविक्रमः ।
 अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ॥६८॥
 अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ।
 आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥६९॥
 महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।
 त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥७०॥
 महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।
 गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रादाधरः ॥७१॥
 वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः संकर्षणोऽच्युतः ।
 वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥७२॥
 भगवान् भगवान्दी वनमाली हलायुधः ।
 आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥७३॥
 सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।
 दिविस्पृक्सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥७४॥
 त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ।
 संन्यासकृच्छ्रमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥७५॥
 शुभाङ्गः शान्तिदः लघ्वा कुमदः कुवलेशयः ।
 गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥७६॥
 अनिवर्तो निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ।
 श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः ॥७७॥
 श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः ।
 श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाल्लोकत्रयाश्रयः ॥७८॥
 स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिज्योतिर्गणेश्वरः ।
 विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतस्थिरः ।
 भूषयो भूषणो भूतिविशोकः शोकनाशनः ॥८०॥
 अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः ।
 अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥८१॥
 कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ।
 त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥८२॥
 कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।
 अनिर्देश्यवर्षुविष्णुर्वीरोऽनन्तो धनंजयः ॥८३॥
 ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ।
 ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥८४॥
 महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
 महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥८५॥
 स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।
 पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिनरनामयः ॥८६॥
 मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।
 वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥८७॥
 सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ।
 शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥८८॥
 भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ।
 दपदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥८९॥
 विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।
 अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥९०॥
 एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।
 लोकबन्धुलोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥९१॥
 सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।

वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥६२॥
 अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।
 सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥६३॥
 तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
 प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥६४॥
 चतुर्मूर्तिश्चर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।
 चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥६५॥
 समावर्तोऽनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
 दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥६६॥
 शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।
 इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥६७॥
 उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।
 अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥६८॥
 सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्वदागीश्वरेश्वरः ॥
 महाहृदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥६९॥
 कुम्भदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ।
 अमृतांशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥७०॥
 सुलभः सुन्नतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।
 न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥७१॥
 सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तधाः सप्तवाहनः ।
 अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः ॥७२॥
 अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।
 अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्द्धनः ॥७३॥
 भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।
 आश्रमः अमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥७४॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।

अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमो यमः ॥१०५॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।

अभिप्रायः प्रियाहोर्हः प्रियकृतप्रीतिवर्धनः ॥१०६॥

विहायसगतिज्योतिः सुरचिहुतभुग्विभुः ।

रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥१०७॥

अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ।

अनिर्विण्णः सदाभर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥१०८॥

सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः ।

स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक्स्वस्तिदक्षिणः ॥१०९॥

अरौद्रः कुण्डलो चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।

शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः सर्वरीकरः ॥११०॥

अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः ।

विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥१११॥

उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ।

वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥११२॥

अनन्तरूपोऽनन्तश्रीजितमन्युर्भयापहः ।

चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥११३॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।

जङ्गलो जनजन्मादिर्भूमो भीमपराक्रमः ॥११४॥

आधारनिलयो धाता पुष्पहासः प्रजागरः ।

कर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥११५॥

प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः ।

तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥११६॥

भूर्भुवःस्वस्तस्तारः सविता प्रपितामहः ।